# परिणीता

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

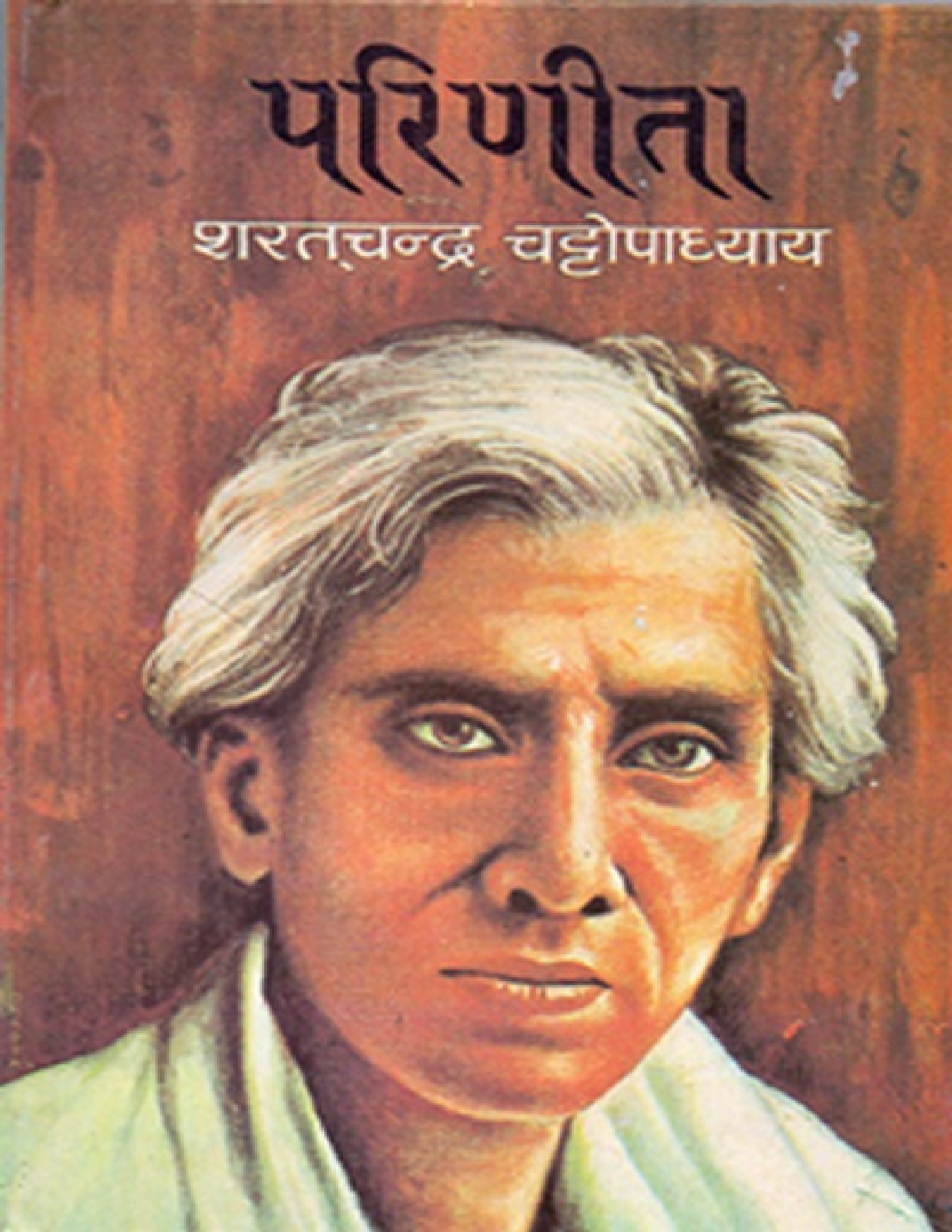

VISIT…

# परिणीता

## शरतचंद्र चट्टोपाध्याय

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

# एक

विचारों में डूबे हुए गुरुचरण बाबू एकांत कमरे में बैठे थे। उनकी छोटी पुत्री ने आकर कहा, ''बाबू! बाबू! माँ ने एक नन्ही सी बच्ची को जन्म दिया है।'' यह शुभ समाचार गुरुचरण बाबू के हृदय में तीर की भाँति समा गया, उसका चेहरा ऐसा सूख गया, मानो कोई बड़ा भारी अनिष्ट हो गया हो! यह पाँचवीं कन्या थी, जो बिना किसी बाधा के उत्पन्न हुई थी।

गुरुचरण बाबू एक साधारण आदमी थे। वह केवल साठ रुपए मासिक वेतन के नौकर थे। उनकी दशा शोचनीय थी, जीवन शुष्क तथा नेत्रों में निराशा की झलक थी। शरीर दुर्बल, मरियल, टट्टू की भाँति था। देखने में ऐसा लगता था कि जान होते हुए भी बेजान हों। फिर ऐसी दशा में यह अशुभ समाचार सुनते ही उनका खून ही सूख गया और हाथ में हुक्का लिए हुए निर्जीव की भाँति, फटे-पुराने तकिए के सहारे लेट रहे। जान पड़ता है कि साँस लेने में भी उन्हें कष्ट हो रहा था।

अन्नाकाली से यह शुभ समाचार सुनकर भी गुरुचरण बाबू कुछ नहीं बोले तो थोड़ी देर बाद वह उन्हें हिलाकर फिर कहने लगी, ''बाबूजी, मुन्नी को देखने न चलोगे?''

गुरुचरण बाबू ने उसकी ओर देखकर धीमे स्वर में कहा, ''बेटी, कंठ सूख रहा है। जा, पहले एक गिलास जल तो ला।''

अन्नाकाली जल लाने गई। उसी समय उन्हें सौर के खर्चों का स्मरण हुआ। गुरुचरण बाबू के मस्तिष्क में भाँति-भाँति की बुरी चिंताएँ बिना बुलाए ही आ-आकर अपना स्थान जमाने लगीं, जैसे किसी गाड़ी के प्लेटफॉर्म पर पहुँचते ही थर्ड क्लास के यात्री एक के ऊपर एक चढ़कर अपना स्थान जमाने की कोशिश करते हैं। गुरुचरण बाबू का मस्तिष्क अब और भी चक्करदार झूले की भाँति झूलने लगा।

दुर्गा-पूजा के दिन आ गए हैं, इसका स्मरण उन्हें था। फिर अभी पिछले वर्ष ही अपनी दूसरी पुत्री के विवाह में अपने बऊ-बाजारवाले पैतृक दुमंजिले मकान को रेहन रखा था, उसका भी लगभग छह माह का ब्याज देना बाकी है। दुर्गा-पूजा के पुनीत पर्व के अवसर पर मँझली बिटिया के यहाँ फल, मिठाई, कपड़े आदि भेजना है। कल दफ्तर का हिसाब आठ बजे रात तक मिलाते रहने पर भी न मिला और आज दोपहर के पहले ही हिसाब मिलाकर विलायत भेजना है। यह तो है ही, फिर बड़े साहब ने गंदे कपड़े पहनकर न आने के लिए ऑर्डर पास कर दिया है। इस आज्ञोल्लंघन से जुरमाना होगा और माहवारी वेतन में कटौती होगी, लेकिन मुसीबत तो यह है कि एक सप्ताह से तलाश करने पर भी कोई अच्छा कपड़े धोनेवाला सस्ता धोबी न मिला। इन सभी दुर्दिन की चिंताओं से ग्रस्त गुरुचरण बाबू हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अपना हाथ ऊपर करके तकिए के सहारे पड़ गए। भगवान् को स्मरण करके कहने लगे, 'हे भगवन्! कलकत्ते में कितने ही आदमी गाड़ी, घोड़े और मोटरों के नीचे दबकर मौत के शिकार होते हैं, क्या वे तुम्हारी दृष्टि में हमसे भी अधिक पापी हैं? दे दयानिधि! हे पतितपावन! यदि कोई लॉरी मेरे ऊपर से चढ़कर निकल जाती तो मैं अपने को भाग्यवान समझता! हे भगवन्! मुझे यही वरदान दो!'

इसी समय अन्नाकाली पानी लेकर आई और कहा, ''पिताजी, लो, उठकर पानी पी लो।''

बड़े कष्ट के साथ गुरुचरण बाबू ने पानी पीकर कहा, ''बेटी जाओ, गिलास ले जाओ।''

गुरुचरण बाबू उसके चले जाने पर फिर लेट गए और पहले के समान विचार-सागर में चक्कर काटने लगे।

ललिता बैठने के कमरे में आकर कहने लगी, ''मामा! चाय लाई हूँ, उठिए।''

गुरुचरण बाबू चाय का नाम सुनते ही फिर एक बार उठे। ललिता की ओर निश्चिंत भाव से एक लंबी साँस छोड़ी और मानो उनका आधा दु:ख खत्म हो गया। उन्होंने कहा, ''आ बेटी, आकर थोड़ी देर मेरे पास बैठ! तूने सारी रात जागते ही बिताई है।''

ललिता मृदु मुसकान के साथ मामा के पास बैठ गई। उनके हृदय में मामा के प्रति बड़ी सहानुभूति थी। वह बोली, ''मुझे रात में अधिक समय नहीं जागना पड़ा।'' ललिता ही अपने मामा की शारीरिक तथा मानसिक व्यथाओं को पूर्ण रूप से समझती थी, परंतु वह भगवान् से प्रार्थना करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकती थी!

बिना माँ-बाप की लड़की ललिता पर उनका असीम प्रेम था। वह उनके समीप बैठी तो वे उसके सिर पर हाथ फेरने लगे और हृदय के सुंदर भावों को व्यक्त करने लगे, ''बेटी, यदि तू किसी अच्छे घर में जाती तो मैं अपना कल्याण समझता।''

ललिता चुप थी और सबकुछ सुन रही थी।

गुरुचरण बाबू फिर कहने लगे, ''ललिता, तुझे इस बेचारे दीन मामा के घर दिन-रात कठिन परिश्रम करना पड़ता है।''

सिर हिलाकर ललिता ने कहा, ''दिन-रात क्यों कठिन परिश्रम करना होता है, मामा? सब लोगों की भाँति मैं भी करती हूँ।''

गुरुचरण बाबू चाय पीते-पीते इस बार कुछ मुसकराकर बोले, ''ललिता, फिर आज खाने-पीने का क्या प्रबंध है?''

ललिता ने मामा की ओर देखकर कहा, ''आज खाना मैं बनाऊँगी, मामा!''

आश्चर्य के साथ गुरुचरण बाबू ने कहा, ''तू क्या बनाएगी? तुझको क्या खाना बनाना आता है, बेटी?''

''जानती हूँ, मुझे मामी ने सिखा दिया है।''

गुरुचरण बाबू चाय का प्याला जमीन पर रखते हुए बोले, ''सच?''

''हाँ, मामा! बिलकुल सच। कितनी बार मामी के सामने मैंने खाना बनाया है।''

यह सुनकर गुरुचरण बाबू ने ललिता के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। आज उन्हें एक कार्य से मुक्ति मिली।

गुरुचरण बाबू का मकान रास्ते के एक किनारे ही था। सड़क पर जानेवाले साफ दिखाई पड़ते थे। चाय पीते हुए वे बाहर सड़क की ओर देखकर बोले, ''शेखर, तुम हो क्या भाई? सुनो, यहाँ आओ।''

एक बड़े डील-डौलवाला युवक कमरे के भीतर आया। गुरुचरण बाबू शेखरनाथ को बैठाकर कहने लगे, ''तुम आज सवेरे अपनी चाची का समाचार सुन ही चुके होगे?''

मुसकराते हुए शेखर ने कहा, ''पुत्री पैदा हुई है, यही न या और कुछ?''

लंबा नि:श्वास छोड़ते हुए गुरुचरण बाबू ने कहा, ''हाँ, तुमने तो कह दिया—यही न? परंतु जो कुछ मुझ पर बीत रही है, उसे मैं ही जान सकता हूँ।''

शेखर ने उत्तर दिया, ''ऐसी बात मुँह से न निकालिए, चाचाजी! नहीं तो चाचीजी सुनेंगी तो उन्हें दु:ख होगा। फिर भगवान् के दिए हुए को ग्रहण करके संतोष करना चाहिए।''

तनिक देर तक चुप रहने के पश्चात् गुरुचरण बाबू ने कहा, ''यह बात तो मैं भी ठीक समझता हूँ कि भगवान् के दिए हुए को ग्रहण करके संतोष करना चाहिए। फिर भी भाई भगवान् भी तो भले-बुरे पर विचार नहीं करते। उन्हें यह

मालूम है कि मैं बिलकुल ही गरीब आमी हूँ, फिर इस प्रकार की कृपा भगवान मुझ गरीब पर क्यों कर रहे हैं? इतनी कन्याओं की भरमार क्यों कर रहे हैं? यह घर भी तुम्हारे पिता के पास रेहन रखा है। घर के रेहन हो जाने पर मुझे तनिक भी सोच नहीं है, किंतु सोच तो इसका है कि एक बोझ सिर से उतरता नहीं और दूसरा फिर आ जाता है। देखो न शेखर, यह स्वर्ण सी सुंदर गुणवती ललिता भी किसी-न-किसी राजघराने की शोभा बढ़ाने के योग्य है, यह अमूल्य रत्न किसी गरीब के घर में शोभित न होगा। स्वयं तुम्हीं सोचो, अपने जीते जी किसी ऐसे-वैसे घर में कैसे भेज दूँ! इसकी सुंदरता के सामने शहंशाहों के छत्रों की मणियाँ भी फीकी हैं। यह एक अनमोल रत्न के समान है, परंतु दु:ख है कि इस अनमोल हीरे का पारखी यहाँ कौन है? आज के युग में लोग धन-दौलत के ही चक्कर में अधिक रहते हैं। इसी कारण दरिद्रता के वश होकर, किसी-न-किसी गँवार के हाथ में इसे दे देना पड़ेगा। बेटा, जरा तुम्हीं विचारो कि ऐसी अवस्था में मेरी मानसिक दशा कैसी होगी? कैसी कड़ी ठेस मेरे हृदय में लगेगी? ललिता अब तेरह वर्ष की हो गई है, परंतु मेरे पास कानी कौड़ी भी नहीं है कि उसके ब्याह की कहीं चर्चा करें।''

यह कहते-कहते गुरुचरण बाबू की आँखों में आँसू भर आए। शेखर भी चुपचाप सभी बातें सुन रहा था। गुरुचरण बाबू ने थोड़ी देर बाद फिर कहना शुरू किया, ''भैया शेखर, तुम्हीं इसका कोई उपाय सोचो! तुम्हारे बहुत से साथी नौजवान होंगे। शायद कोई तुम्हारी बात मानकर ललिता को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाए और श्रद्धा के साथ इस कन्या का उद्धार हो जाए! मैंने यह सुना है कि आजकल के गरीब नौजवान पैसे की बात नहीं उठाते। वे केवल यह चाहते हैं कि स्त्री सुशील, सुंदर और गुणवती हो। इस कारण संभव है कि परमात्मा की अनुकंपा और तुम्हारे प्रयास से कोई तैयार हो जाए और मेरी तकलीफ दूर हो जाए! मैं हृदय से तुमको आशीर्वाद देता हूँ भैया, तुम सुखी हो और राजभोगी होओ! इससे अधिक और कौन सा वरदान दे सकता हूँ। केवल तुम सबके सहारे ही मैं यहाँ पड़ा हूँ। तुम्हारे पिता भी मुझे अपने छोटे भाई के सदृश मानते हैं और अच्छा व्यवहार करते हैं।

शेखर ने सिर झुकाकर कहा, ''अच्छा, मैं इसके लिए कठिन परिश्रम करूँगा तथा कोई कमी न रखूँगा!''

गुरुचरण बाबू ने फिर कहा, ''भूल न जाना, भैया! ललिता के बारे में तुम्हें सब पता है। आठ वर्ष की उम्र से तुम्हीं ने इसको पढ़ना-लिखना सिखाया है। इसकी बुद्धिमानी, सुशीलता तथा शिष्टता तुमसे छिपी नहीं है। तुमसे अधिक किसी को ज्ञात भी नहीं! यह छोटी सी लड़की आज ही से गृहस्थी का पूरा कार्य सँभालेगी, इसी पर सारा बोझ आ पड़ा है।''

ललिता चुपचाप बैठी थी, पर इस बार उसने सिर उठाकर शेखर की ओर दृष्टि फेंकी और उसकी निगाह पड़ते ही होंठों में कुछ मुसकराई और सिर नीचा कर लिया।

गुरुचरण बाबू ने फिर गहरी साँस लेकर कहना आरंभ किया, ''ललिता के पिता ने कोई कम पैसा पैदा नहीं किया, लेकिन अपनी दानशीलता के कारण सब दान करगए और अपनी इकलौती पुत्री के लिए एक कौड़ी भी न बचाई।''

इस बार भी शेखर मौन था।

आप-ही-आप गुरुचरण बाबू फिर कहने लगे, ''लेकिन यह भी कैसे कहूँ कि कुछ भी नहीं छोड़ गए। उन्होंने जिन दु:खियों का दु:ख दूर किया है, उसका फल मेरी इस बच्ची को अवश्य मिला है! उसी कारण से मेरी यह छोटी सी बच्ची अन्नपूर्णा है अन्यथा कैसे वह इतनी गुणवती होती। तुम स्वयं ही विचार करो, शेखर!''

शेखर चुपचाप मुसकराता रहा।

कुछ देर बाद शेखर ज्यों ही जाने को तैयार हुआ तो गुरुचरण बाबू फिर एक बार याद दिलकर कहने लगे, ''जो

कुछ मैंने कहा है, भैया उसका खयाल अवश्य रखना! देखने में उसका रंग अवश्य साँवला है, परंतु इसकी ऐसी सुंदरता, मधुरता, ममता, दया और योग्यता संसार में ढूँढ़ने पर भी मिलना कठिन है।''

सिर हिलाता हुआ शेखर बाहर निकल गया। उसकी उम्र लगभग पच्चीस या छब्बीसवर्ष की होगी। एम.ए. कर चुकने के बाद वह कुछ दिन कानून पढ़ता रहा, फिर पिछले वर्ष इम्तिहान पास करके एटर्नी हो गया है। उसके बाप नवीनराय गुड़ के व्यापारी हैं। वे इसी व्यापार से लखपति बन गए हैं और अब घर बैठे ही व्यापार करते हैं। उनके बड़े लड़के का नाम अविनाश है, जो वकालत करते हैं। छोटे पुत्र का नाम शेखर है। राय महोदय का आलीशान तिमंजिला मकान, सभी मकानों से ऊँचा है। यह गुरुचरण बाबू के मकान से सटा था। उस मकान की लंबी-चौड़ी छत गुरुचरण बाबू के मकान की छत से मिली हुई थी। इसी कारण दोनों में घनिष्ठता थी और पारस्परिक प्रेम भी अधिक था। दोनों घरों की स्त्रियों के एक-दूसरे के घर आने-जाने का वही एकमात्र रास्ता था।

❑

Book House1

चैनल जॉइन करने के लिए telegram
डाउनलोड करने के बाद सर्च में
@BOOKHOUSE1 लिखे और सर्च करे

https://t.me/bookhouse1

# दो

श्याम-बाजार के एक सुख-संपन्न, भरपूर वैभवशाली परिवार में शेखर की शादी की बात चल रही थी। वे लोग आज आए थे, विवाह का मुहूर्त अगले माह ही निश्चित करने की बात कर गए हैं, लेकिन इस प्रस्ताव को शेखर की माँ ने शायद मंजूर नहीं किया। उन्होंने अंदर से एक नौकरानी द्वारा संदेश भिजवा दिया कि जब तक शेखर लड़की को देख न आए और पसंद न कर आए, तब तक मुहूर्त कैसे ठीक होगा?

नवीनराय की निगाह केवल धन-दौलत पर थी और शायद उन्हें उनके अनुमान से अधिक मिलता। उन्होंने मालकिन की यह बात सुनकर बड़ा ही क्रोध किया और कहा, ''यह क्या कहती हो? लड़की देखने की क्या आवश्यकता? वह तो देखी ही है! पहले संबंध स्थापित हो जाने दो, फिर आशीर्वादवाले दिन, यदि शेखर चाहेगा तो देख आएगा, साथ ही और सभी लोग देख लेंगे।''

इतना कहने पर भी उनकी पत्नी सहमत न हुई। उन्होंने इस संबंध को पक्का न होने दिया और कहा, ''शेखर की सहमति के बिना संबंध कदापि तय न होगा।''

स्त्री की इन बातों से नवीनराय कुपित हो गए, उस दिन बिना खाए-पिए ही बैठक में पड़े रहे।

शेखर शौकीन मिजाज का व्यक्ति था। वह मकान के तिमंजिले पर रहता था। उसका सारा कमरा आधुनिक ढंग से सुसज्जित था। माँ के कई दिन से आग्रह करने पर आज शेखर लड़की देखने जाने की तैयारी में लगा हुआ था। कपड़े-जूते आदि पहनकर, शीशे के सामने खड़ा होकर बाल सँवार रहा था कि ललिता वहाँ आ गई। उसके आने का पता भी उसे न चला। कुछ देर मौन खड़ी रहकर ललिता ने उससे पूछा, ''बहू को देखने जा रहे हो न?''

पीछे घूमते हुए शेखर ने कहा, ''ओहो! तुम आ गईं, ललिता! देखो, भलीभाँति साज-सामान कर दो। कोई कमी न रह जाए, जिससे बहू तुरंत पसंद कर ले!''

ललिता मंद हँसी के साथ बोली, ''शेखर भैया, इस समय बिलकुल समय नहीं है। मैं तो सिर्फ कुछ रुपए लेने आई हूँ!'' इतना कहकर तकिए के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर दराज खोली और कुछ रुपए निकाले। उन रुपयों को आँचल में बाँधती हुई अपने आप बोली, ''जब आवश्यकता पड़ती है, तभी रुपए ले जाती हूँ, परंतु यह सब अदा कैसे होंगे?''

शेखर बालों में कंघी कर रहा था। ललिता की यह बात सुनकर उसकी ओर मुड़कर बोला, ''अदा होंगे या हो रहे हैं?''

इस बात का मतलब ललिता तनिक भी न समझ सकी। वह टकटकी बाँधे उसकी ओर देखती रही।

''मेरी ओर क्या देखती हो, क्या समझती नहीं?''

सिर हिलाकर ललिता बोली, ''नहीं!''

''फिर अभी समझने की आवश्यकता भी नहीं! थोड़ी और बड़ी हो जाने पर आप-ही-आप समझ में आ जाएगा।'' यह कहकर वह बाहर चला गया।

संध्या हो जाने पर शेखर लौटकर आया और चुपचाप सन्न होकर अपने बिस्तर पर पड़ा न जाने क्या सोचता रहा। इसी समय उसकी माँ वहाँ आई। उसे देखते ही वह चट उठ बैठा। माँ ने कुरसी घसीटकर उसके नजदीक कर ली और बैठकर पूछा, ''लड़की अच्छी है या नहीं, तूने कुछ बताया नहीं?''

मीठी हँसी के साथ शेखर ने कहा, ''अच्छी है, माँ!''

शेखर की माँ का नाम भुवनेश्वरी था। अवस्था लगभग पचास साल की थी, फिर भी शरीर की सुडौल गठन के कारण देखने में वह पैंतीस-छत्तीस की ही मालूम पड़ती थीं। उसके शरीर का प्रत्येक अंग सुडौल, सुदृढ तथा सुंदर था। उनका हृदय बहुत ही कोमल था। वैसे वह गाँव की बालिका थीं, फिर भी शहर में ब्याह होने पर शहरी जीवन की चटक-मटक में घुल-मिल गईं। किसी दिन भी उनमें देहातीपन न दिखाई दिया। सदाचार-शिष्टाचार आदि में वह दूसरी औरतों से कदापि पीछे न थीं। एक ओर जिस प्रकार से उन्होंने शहरी जीवन को अपना लिया, उसी तरह दूसरी ओर अपने ग्रामीण जीवन की सादगी, सरलता, सच्चाई और सरसता को खत्म नहीं होने दिया।

शेखर के लिए भुवनेश्वरी कितने बड़े गौरव की चीज थीं, इसका ज्ञान पूर्ण से उसकी माँ को भी नहीं था। वह हृदय में जैसे अपनी माँ की पूजा किया करता था, वैसे ही उसके लिए सभी वस्तुएँ सदैव उपलब्ध थीं। उसमें बुद्धि, विद्या, सुंदरता तथा वैभव की कमी नहीं थी, परंतु फिर भी भुवनेश्वरी ऐसी माँ के पेट से जन्म पाने के सौभाग्य को वह भगवान की एक परम देन समझता था, इसीलिए वह मन, वचन, कर्म से उनका कृतज्ञ था।

शेखर की माँ ने कहा, ''अच्छी है। यही कहकर तू चुप हो गया!''

शेखर ने नीची दृष्टि करके मुसकराते हुए कहा, ''तुमने जो पूछा, वही मैंने बतला दिया और मैं कहता ही क्या?''

भुवनेश्वरी भी शेखर की बात सुनकर हँस पड़ीं और बोलीं, ''बेटा, तूने भली प्रकार मेरे प्रश्न का उत्तर कहाँ दिया? कैसा बदन है, गोरा है या साँवला? ललिता की ही तरह है न?''

दृष्टि ऊपर उठाते हुए शेखर ने कहा, ''ललिता का रंग तो साँवला है, पर वह तो उससे साफ रंग की है।''

''उसकी आँखें तथा मुख की बनावट कैसी है?''

''कोई बुरी नहीं है, माँ!''

''तो शादी पक्की करने के लिए तेरे पिता से कह दूँ?''

माँ की यह बात सुनकर शेखर चुप हो रहा। वह थोड़ी देर माँ की ओर देखता रहा तो माँ ने फिर पूछा, ''बेटा! लड़की कुछ पढ़ी भी है? कहाँ तक पढ़ी है?''

''इसे तो मैं पूछना ही भूल गया।''

बड़े आश्चर्य में पड़कर माँ ने कहा, ''फिर पूछा क्यों नहीं, बेटा? आज के नवयुवक जिस बात को महत्त्वपूर्ण समझते हैं, उसे ही तू पूछना भूल गया?''

मुसकराते हुए शेखर ने कहा, ''ध्यान से ही उतर गया!''

शेखर का यह उत्तर सुनकर भी उसकी माँ के आश्चर्य में कमी न हुई। थोड़ी देर तक वह अपने पुत्र की तरफ देखती खड़ी रहीं, फिर कहने लगीं, ''फिर यह साफ-साफ क्यों नहीं कहता कि तेरी इच्छा वहाँ शादी करने की नहीं है।''

इस बात का उत्तर शेखर देना ही चाहता था कि उसी समय ललिता वहाँ आ गई। उसको देखते ही वह चुप रह गया। ललिता धीरे-धीरे आकर भुवनेश्वरी के पीछे खड़ी हो गई। बाएँ हाथ से उन्होंने उसे सामने खींचकर कहा, ''क्यों बिटिया?''

धीमे स्वर में ललिता ने कहा, ''कुछ भी नहीं, माँ!''

ललिता पहले भुवनेश्वरी को मौसी कहती थी, परंतु भुवनेश्वरी ने ही उसे रोक लिया और कहा था, ''मैं माँ अवश्य हूँ, पर मौसी नहीं।'' उसी समय से ललिता उन्हें माँ कहती थी और कभी-कभी अम्मा। भुवनेश्वरी ने बड़े ही स्नेह से उसको अपनी छाती के पास खींचकर कहा, ''कुछ भी नहीं? तब तो ऐसा लगता है, मुझे देखने ही आई

है!''

ललिता चुप खड़ी रही।

शेखर बोला, ''माँ, तुम्हें देखने तो आई है, किंतु इतना समय कहाँ है इसे? कब खाना बनाएगी? इन लोगों का खाना कौन बनाएगा, माँ? इसके मामा ने तो उस दिन कहा था कि अब ललिता ही खाना बनाएगी!''

माँ को शेखर की बात पर हँसी आ गई। वह बोलीं, ''इसके मामा की बात को क्या कहा जाए। जो कुछ भी उसके मन में आ गया, कह डाला! इसका अभी ब्याह तक नहीं हुआ। यह तो अभी बच्ची है, शेखर! उसके मामा ने जो कह दिया, क्या वही काफी हो गया? फिर इसके हाथ का बनाया हुआ खाएगा ही कौन? अपने यहाँ की महराजिन को मैंने कहला भेजा है, अब वही वहाँ रसोई बनाएगी। अपने यहाँ सबकुछ तेरी भाभी कर लेती है, फिर आजकल दोपहर को मैं ललिता के यहाँ ही भोजन करती हूँ।''

शेखर समझ गया कि माँ ने अपनी सहृदया से ही इस बेचारे परिवार के दु:खों को कम करने के लिए, वह बोझ स्वयं ही उठाया है। वह आराम की साँस लेता हुआ चुप हो रहा।

एक-डेढ़ माह बीतने पर एक दिन संध्या समय अपने कमरे में शेखर कोच पर लेटा हुआ पढ़ने में व्यस्त था, किसी उपन्यास के रस में लीन था। उसी समय ललिता आई और तकिए के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर खटखटाती हुई दराज खोलने लगी। शेखर ने पढ़ते हुए ही पूछा, ''क्या कर रही हो?''

ललिता ने कहा, ''रुपए ले रही हूँ।''

''हूँ!'' कहकर वह फिर पढ़ने में व्यस्त हो गया। आँचल में रुपए बाँधकर ललिता उठी। आज वह साज-श्रृंगार करके वहाँ आई थी। उसकी मनोवृत्ति ऐसी थी कि एक बार शेखर उसकी ओर दृष्टि डाले।

ललिता ने फिर कहा, ''भैया, दस रुपए लिए हैं।''

शेखर ने कहा, ''अच्छा।'' परंतु उसने दृष्टि उठाकर ललिता की ओर न देखा। उसे कुछ दूसरा उपाय न समझ में आया तो वहाँ का सामान इधर-उधर धरने-उठाने लगी। यह कोशिश भी बेकार जाती देख, वह धीरे-धीरे चली गई। फिर भी वह सोचती यही रही कि इस प्रकार चले जाने से कोई काम न बन सकेगा। वह फिर दरवाजे के पास आकर खड़ी हो गई और प्रतीक्षा करती रही। आज उसका थियेटर देखने का प्रोग्राम था।

प्रोग्राम बन जाना ही पर्याप्त न था, क्योंकि उसे पता था कि वह घर के बाहर एक कदम भी शेखर की मर्जी के बिना न जा सकती थी। यह बात उसे किसी ने बताई भी न थी कि उसकी आज्ञा मानना क्यों आवश्यक है और न उसने इस बात पर कभी वाद-विवाद ही किया। जिस प्रकार मनुष्य अपनी बुद्धि से सोचकर कोई धारणा निर्धारित कर लेता है, उसी प्रकार उसने अपनी स्वाभाविक बुद्धि से उसकी आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया था। उसके हृदय में यह बात धंस गई थी कि और लोग अपनी इच्छा से जैसा चाहे कर सकते हैं, कहीं भी जाना चाहें, जा सकते हैं; परंतु मैं उन लोगों की नकल करने में असमर्थ हूँ। उसको अपनी बेबसी का पूरा अनुभव था; उसे मामा-मामी की आज्ञा उचित प्रतीत नहीं होती थी।

दरवाजे के एक ओर खड़ी ललिता ने धीमे स्वर में कहा, ''हम लोग थिएटर देखने जाते हैं।''

ललिता का यह मंद स्वर उसके कानों तक न पहुँचा, इसीलिए शेखर ने उसका जवाब भी कुछ नहीं दिया।

इस बार ललिता ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा, ''सभी लोग मेरा रास्ता देखते होंगे।''

इस बार ललिता की आवाज उसके कानों तक जा पहुँची। उपन्यास को एक ओर रखते हुए बोला, ''क्या बात है?''

ललिता ने कुछ गुस्से में कहा, ''अब आपको इतने समय के बाद सुनाई दिया? हम सभी लोग आज थिएटर देखने जा रहे हैं।''

शेखर ने पूछा, ''हम लोगों से क्या आशय है? कौन से लोग?''

ललिता ने जवाब दिया, ''मैं, अन्नाकाली, चारुबाला और उसका मामा तथा भाई इत्यादि।''

शेखर ने कहा, ''कौन उसका मामा?''

ललिता बोली, ''गिरीन्द्र बाबू उसका नाम है। उनको यहाँ आए पाँच-छह दिन हुए, मुंगेर में रहते हैं। अब वह कलकत्ते में ही बी.ए. पढ़ेंगे। बहुत ही भले आदमी हैं।''

बीच में ही शेखर ने कहा, ''अच्छा तुमने उनके बारे में सभी कुछ जान लिया? लगता है खूब मेल हो गया। यही कारण है कि आज चार-पाँच दिन से गायब रहती थीं। हाँ, शायद ताश-वाश खेला करती होगी।''

शेखर के बात करने का ढंग बदला हुआ देखकर ललिता सन्न हो गई। उसे स्वप्न में भी इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने का खयाल न था। वह चुपचाप मुँह नीचा किए खड़ी रही।

शेखर ने फिर पूछा, ''तो कहो न, इधर कई दिन से खूब ताश उड़ा करते थे न?''

बड़े ही धीमे स्वर में विवश होकर उसने संकोच में कहा, ''हाँ, चारुबाला के कहने-सुनने...।''

''कहने से क्या?'' यह कहते हुए ललिता पर शेखर ने सीधी नजर डाली और फिर कहा, ''पूरी सज-धजकर आई हो। बहुत ठीक! अच्छा जाओ!''

परंतु ललिता निर्जीव की भाँति चुपचाप खड़ी रही।

चारुबाला ललिता की पड़ोसन है। दोनों हमजोली हैं। चारुबाला ब्रह्मसमाजी परिवार की है। गिरींद्र के सिवा उसके परिवार के सभी लोग शेखर से परिचित हैं। पाँच-सात वर्ष पहले की बात है, एक बार गिरींद्र यहाँ आया था और कुछ दिनों तक रहा था। अब तक बाँकीपुर में शिक्षा ग्रहण करता था। कलकत्ता आने का कभी न मौका मिला और न आया ही था, इसीलिए शेखर उससे परिचित न था। शेखर ने ललिता को खामोश खड़े देखकर कहा, ''जाओ न, बेकार में खड़ी क्यों हो? जाओ!'' इतना कहकर शेखर ने उपन्यास उठाया और उसी में विभोर हो गया।

कुछ समय और चुपचाप खड़े रहने के पश्चात् ललिता ने फिर धीमे स्वर में पूछा, ''जाऊँ?''

शेखर ने कहा, ''हाँ, कह तो दिया!''

शेखर के इस प्रकार के व्यवहार से ललिता का थियेटर जाने का उत्साह समाप्त हो गया, परंतु ऐसी दुविधा में वह फँसी थी कि न जाने में भी अनिष्ट था।

यह निश्चय हुआ था कि आधा-आधा खर्च ललिता और चारुबाला मिलकर देंगी।

चारुबाला के घरवाले उसकी राह देखते-देखते परेशान हो गए होंगे। समय जितना अधिक होता जा रहा है, उनकी व्याकुलता भी बढ़ती होगी। अपनी कल्पना से ही ऐसा दृश्य उसकी आँखों के सामने दिखाई पड़ने लगा। फिर भी उसे अपने बचाव का कोई रास्ता न दिखाई दिया। दो-तीन मिनट और चुपचाप बीते। फिर ललिता ने कहा, ''सिर्फ आज ही जाऊँगी, जाऊँ?''

पुस्तक को एक ओर फेंकते हुए शेखर ने कहा, ''परेशान क्यों कर रही हो, ललिता? जो भी मन में आए, सो करो! अब काफी बड़ी हो चुकी हो, स्वयं अपना अच्छा-बुरा समझ सकती हो!''

ललिता शेखर की ये बातें सुनकर और भी आश्चर्य में पड़ गई। शेखर अकसर ललिता को धमकाया करता था, यह पहला मौका न था। उसे यह सब सुनने का अभ्यास था। फिर इधर दो-तीन साल से इससे वह मुक्त थी। उधर

उसके सभी साथी प्रतीक्षा में हैं और उधर ललिता स्वयं सज-धज के साथ खड़ी है। केवल रुपया लेने आने के कारण ही यह रोड़ा सामने आ गया। आखिर वह अपने उन साथियों को क्या जवाब देगी?

आज तक ललिता को कभी शेखर ने नहीं रोका था। वह स्वतंत्र थी, कहीं भी आ-जा सकती थी। आज भी वह सज-धजकर शेखर के पास रुपए ही लेने के लिए आई थी। आज उसकी स्वाधीनता पर जो कुल्हाड़ी चल रही थी, उसका उसे दु:ख न था। दु:ख उसे केवल इस बात का था कि इस तेरह वर्ष की उम्र में उसे शेखर की डाँट सुननी पड़ी। उस अवस्था को याद करके वह शर्म से मानो जमीन में धँस गई। स्वाभिमान के आँसू भरे हुए, वह पाँच मिनट तक मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही। उसका हृदय अँगीठी की भाँति जल रहा था, परंतु शेखर की ओर से कुछ नम्रता का भाव न देखकर आँखों के आँसू पोंछती हुई वह चुपचाप चली गई।

ललिता अपने घर आई और नौकारनी को भेजकर अन्नाकाली को बुलवाया। दस रुपए उसके हाथ में देते हुए उसने कहा, ''तुम सब लोग थियेटर देख आओ! मेरी तबीयत ठीक नहीं है। चारु से भी यही कह देना कि इसी कारण मैं न जा सकूँगी।''

अन्नाकाली ने पूछा, ''क्या हुआ, जीजी?''

ललिता ने कहा, ''मालूम देता है कि सिर फटा जा रहा है और जी मचलाता है। तबीयत खराब होती ही जा रही है!''

यह कहते हुए वह करवट बदलकर लेट गई। चारुबाला ने आकर खूब समझाया, चलने के लिए मामी से जबरदस्ती सिफारिश करवाई, फिर भी ललिता को साथ में न ले जा सकी।

अन्नाकाली को दस रुपए मिल ही चुके थे, इसलिए वह थियेटर जाने के लिए बेचैन थी। इस कारण कहीं कोई गड़बड़ न हो जाए, इस भय से चारु को अलग ले जाकर दस रुपए का नोट दिखाकर बोली, ''दीदी की हालत ठीक नहीं है। अगर वह नहीं जातीं तो हर्ज ही क्या है? यह लो, आओ, हम लोग देखने चलें।''

यह बात चारु की भी समझ में गड़ गई। हालाँकि अन्नाकाली अभी उम्र में छोटी थी, पर चतुर बहुत थी। वह तैयार हो गई और अन्नाकाली को साथ लेकर चली गई।

❑

# तीन

चारुबाला की माँ का नाम मनोरमा था। ताश खेलने से बढ़कर उन्हें और कोई शौक न था, परंतु जितनी वह खेलने की शौकीन थीं, उतनी उनमें खेलने की दक्षता न थी। ललिता उनकी तरफ से जब खेलती थी तो उनकी यह कमी पूरी होती थी। मनोरमा के ममेरे भाई गिरींद्र के इधर आने पर मनोरमा के घर ताश की बाजियाँ कई दिन से बराबर दोपहर को जमती हैं। गिरींद्र अच्छा ताश खेल लेता था। वह सदैव मनोरमा के विपरीत खेलता था। इस कारण उसे ललिता का सहयोग बहुत ही आवश्यक था। उसके खेलने पर जोड़-तोड़ की बाजी होती थी।

थियेटर से लौटने के बाद दूसरे दिन ललिता मनोरमा के घर ठीक समय पर जब न आई तो मनोरमा ने अपनी नौकरानी को उसे बुला लाने के लिए भेजा। उस समय ललिता अंग्रेजी की किसी किताब का बंगला में अनुवाद कर रही थी। इसलिए वह नहीं गई। फिर उसकी सखी चारुबाला उसे बुलाने के लिए आई, परंतु उसके कहने पर भी ललिता न आई।

अब मनोरमा स्वयं ही उसे बुलाने के लिए आ उपस्थित हुई। उसकी कॉपी और किताब को एक ओर रखती हुई बोली, ''चल ललिता, तुझे बड़ी हो जाने पर जज नहीं बनना है। आज ताश खेलना ही पड़ेगा। चल, जल्दी चल।''

ललिता परेशानी में पड़ गई। रुआँसी होकर उसने अपनी कठिनाई बतानी शुरू की। उसने कहा, ''आज मेरा पहुँच सकना कठिन है, कल अवश्य आऊँगी।'' और भी तरह-तरह की अनुनय-विनय की, परंतु उसने जरा भी नहीं सुना। ललिता की मामी के कहने पर मनोरमा उसका हाथ पकड़कर लिवा आई। आज भी वह गिरींद्र के विपक्ष में खेली, परंतु दिल न लगने के कारण खेल में तनिक भी मजा न आया। खेल के आरंभ से अंत तक वह उद्‌भ्रांत तथा मलिन बनी रही। हृदय में एक धुकधुकी सी उठती रही। किसी तरह उसने जल्दी ही खेल खत्म किया और वहाँ से चली गई। जाते समय गिरींद्र ने कहा, 'कल तो आप टाल गईं, केवल रुपया भेजकर ही रह गईं! चलिए, कल फिर देखने चलेंगे।''

मीठे स्वर में ललिता ने कहा, ''नहीं, कल मेरी तबीयत बहुत खराब हो गई थी!''

मुसकराते हुए गिरींद्र ने फिर कहा, ''मगर अब तो आप ठीक हैं न? चलिए, कल तो आपको जरूर ही चलना होगा!''

''मैं तो कल बिलकुल ही नहीं पहुँच सकूँगी! नहीं-नहीं, मुझे तो कल बहुत ही काम है!'' यह कहकर वह तेजी से वहाँ से चली गई। आज उसका मन केवल शेखर के भय से ही नहीं लग रहा था, यह बात न थी, पर न मालूम क्यों आज उसे लज्जा लगती थी।

शेखर के ही घर की तरह, पास के घर में भी ललिता का छोटेपन से आना-जाना तथा खेलना-कूदना था। उससे किसी भी तरह का कोई परदा न था। यही कारण था कि उसने चारु के मामा से भी परदा न किया। बात करने में भी उसे किसी तरह की हिचक न मालूम हुई, परंतु जाने क्यों बार-बार उसके हृदय में यह बात उठने लगी कि इस थोड़े से समय के परिचय में ही गिरींद्र ने उसे इस प्रकार प्यार भरी दृष्टि से क्यों देखना शुरू कर दिया। आज के पहले उसने कभी खयाल भी न किया था कि पुरुषों की प्रेमपूर्ण निगाहें भी इतनी गहरी लज्जा का सृजन कर सकती हैं।

क्षण भर की झिझक के पश्चात् ही वह अपने घर से शेखर के घर चली गई। शेखर के कमरे में सीधे पहुँचकर वह अपने काम में व्यस्त हो गई। बचपन से ही ललिता शेखर के तमाम काम करती आ रही है। शेखर की पुस्तकें सजाने तथा अस्त-व्यस्त चीजों को कायदे से सजा देने में उसको आनंद मिलता था। अब तो ऐसा था कि शेखर के

कमरे में कोई जाता ही न था। यदि किसी दिन ललिता न आ पाती तो शेखर के कमरे में कबाड़ी की दुकान का सा सामान फैला रहता था। कहीं कपड़े पड़े होंगे तो कहीं दवात गिरी होती और कहीं किताबें इधर-उधर पड़ी होतीं। पाँच-सात दिन से ताश के चक्कर में पड़कर ललिता न आ सकी। इससे कमरे का और भी बुरा हाल था। सारी चीजें इधर-उधर फैली थीं। मालूम होता था कि सभी चीजों को किसी ने जान-बूझकर इधर-उधर फैलाया है। ललिता अपने काम में लग गई और सभी चीजों को यथास्थान रखना शुरू कर दिया। वह शेखर के आने के पूर्व ही सब काम समाप्त करके चले जाने की धारणा में थी और जल्दी-जल्दी कार्य करने लगी।

भुवनेश्वरी के घर ललिता फुरसत पाने पर आती और उसके पास बैठती। इस घर के सभी लोगों से उसका घर का सा व्यवहार था। इस घर के सभी लोग भी उसको घर का ही एक सदस्य समझते थे। माता-पिता के देहांत के समय उसकी उम्र आठ वर्ष की थी। अत: विवशतावश मामा के यहाँ आना पड़ा था। उसी समय से वह शेखर को छोटे भाई की भाँति घेरे रहती है तथा उससे ही इतनी शिक्षा प्राप्त की है। सभी को यह मालूम है कि ललिता पर शेखर का बहुत प्रेम है। वह प्रेम अब बदलकर कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचा है, इसका किसी को पता न था। ललिता स्वयं भी न जानती थी। सब केवल इतना ही जानते हैं कि बचपन से ही शेखर के निकट रहती है और उससे असीम आदर पाती है। अब तक उनमें से किसी को भी यह अनुचित न लगा था। फिर शेखर ने ललिता के साथ कोई ऐसा भी व्यवहार नहीं किया कि उस पर किसी का ध्यान विशेष रूप से पड़ता। किसी ने यह भी स्वप्न में खयाल न किया था कि इस घर की बहू ललिता बनेगी या बन सकती है। इस बात की कल्पना दोनों के परिवारों में से किसी ने न की थी। भुवनेश्वरी ने भी कभी ऐसा न सोचा था।

ललिता ने सोचा था कि वह काम समाप्त करके शेखर के आने के पूर्व ही कमरे से चली जाएगी, लेकिन उसकी मनोभावनाओं के चंचल होने के कारण, घड़ी की ओर उसकी दृष्टि ही न गई। समय काफी हो गया। कमरे के दरवाजे के सामने जूतों की चरमराहट से उसे होश आया और सिटपिटाकर वह एक ओर खड़ी हो गई।

कमरे के अंदर पहुँचते ही शेखर ने कहा, ''ओह! अहोभाग्य! तुम आई हो! कहो, कल कितनी रात बीते लौटीं?''

ललिता चुपचाप खड़ी रही।

शेखर एक आरामकुर्सी पर बैठकर कहने लगा, ''कहो, कल तुम कितने वक्त लौटीं? आखिर दो बजे या तीन बजे? क्या मुँह से बोल भी नहीं फूटता?''

ललिता फिर भी चुप ही खड़ी रही।

उसे चुप देखकर शेखर ने गुस्से से कहा, ''यदि बोलना ही नहीं है तो खड़ी क्यों हो? नीचे चली जाओ, माताजी बुलाती हैं।''

ललिता मुँह फीका किए हुए नीचे चली आई। भुवनेश्वरी रसोईघर में बैठीं जलपान का सामान थाली में सजा रही थीं। उसके समीप आकर ललिता ने पूछा, ''माताजी, आपने मुझे बुलाया है?''

''नहीं, मैंने तो तुम्हें नहीं बुलाया!'' यह कहते हुए उन्होंने ललिता की तरफ देखा और कहने लगीं, ''तुम इतनी सूखी सी क्यों हो, ललिता? मुझे लगता है कि तुमने कुछ खाया-पिया भी नहीं।''

ललिता ने उत्तर में गरदन हिला दी।

भुवनेश्वरी ने कहा, ''अच्छा ले, नाश्ते की थाली अपने दादा को दे आ।''

थोड़ी देर पश्चात् ललिता थाली लिए हुए कमरे में आई। उसने देखा कि शेखर पहले की तरह आरामकुरसी पर आँखें बंद किए हुए लेटा है। अभी तक उसने दफ्तरवाले कपड़े भी नहीं उतारे थे। हाथ-मुँह भी नहीं धोया। उसके

नजदीक आकर ललिता ने कहा, ''नाश्ता लेकर आई हूँ।''

आँखें बंद किए हुए शेखर ने कहा, ''कहीं रख दो!''

परंतु ललिता नाश्ते की थाली लिए वहीं पर चुपचाप खड़ी रही।

शेखर ने वैसे आँखें तो नहीं खोली थीं, फिर भी उसे ज्ञात हो रहा था कि ललिता गई नहीं, वह मूर्तिवत् खड़ी है। दो-तीन मिनट चुप रहने के बाद शेखर ने फिर कहा, ''कब तक इस प्रकार खड़ी रहोगी? अभी मुझे देर है। नाश्ते को रख दो और जाओ!''

यह सुनकर ललिता मन-ही-मन कुछ बिगड़ रही थी, फिर भी अपने मंद स्वर में ही उसने कहा, ''देरी है तो कोई बात नहीं, इस समय मुझको भी कोई काम नहीं है।''

इस बार शेखर ने उसकी ओर देखा और हँसते हुए बोला, ''बड़े भाग्य, जुबान का ताला तो टूटा! अगर नीचे काम नहीं है तो पड़ोसी के घर में तो बहुत काम होगा। यदि वहाँ भी काम नहीं है तो और आगेवाले घर में कोई-न-कोई काम अवश्य होगा! एक ही घर तो तुम्हारा नहीं है, कई हैं न?''

''हाँ, हैं तो, मेरे कई घर हैं!'' यह कहती हुई नाराजगी से भरकर नाश्ते की थाली को वहीं मेज पर रखकर तेजी से कमरे के बार चली गई।

उसको जाते देखकर शेखर ने जोर से कहा, ''ललिता, जरा संध्या समय कुछ सुन जाना!''

''नीचे-ऊपर हजारों बार आने की मुझ में शक्ति नहीं है।'' ललिता यह कहकर नीचे चली गई।

माँ ने उसे देखते ही कहा, ''बेटी, भैया को नाश्ता तो दे आई, पर यह पान तो ले जाना भूल ही गई!''

ललिता ने कहा, ''माँ, मुझको तो बड़ी भूख लगी है। इस समय मैं ऊपर न चढ़ सकूँगी। किसी दूसरे के हाथ से पान भिजवा दो।''

ललिता के सुंदर मुख की झल्लाहट और परेशानी की लालिमा के चिह्नों को देखकर भुवनेश्वरी ने उसे अपने पास बैठाते हुए कहा, ''अच्छा, अच्छा! ले, तू खा-पी ले! पान किसी नौकरानी के हाथ भेज देती हूँ।''

ललिता ने कुछ भी नहीं कहा और भोजन करने के लिए जा बैठी।

शेखर पर उसको गुस्सा आया। थियेटर देखने भी नहीं गई, फिर भी शेखर ने उसे बहुत भला-बुरा सुनाया। ताश खेलने के लिए चारु की माँ उसे जबरदस्ती ले जाती है। उसकी मजबूरी को शेखर ने नहीं देखा और तमाम कहा-सुना! इसी गुस्से के कारण वह शेखर के पास चार-पाँच दिन नहीं आई, परंतु जब शेखर दफ्तर चला जाता तो वह दोपहर को आती और सभी चीजें साफ करके यथास्थान रख जाती थी। शेखर के आने के पहले ही वह चली जाती।

शेखर को बाद में अपनी भूल मालूम हुई। उसे पता चला कि ललिता उस दिन थियेटर देखने नहीं गई थी। अपनी भूल मालूम होने पर उसे बड़ा दु:ख हुआ। इसीलिए दो दिन उसने ललिता को बुलाने के लिए आदमी भेजा, फिर भी ललिता नहीं आई।

❑

# चार

उस मोहल्ले में अकसर एक दीन-दु:खी बूढ़ा फकीर भीख माँगने आया करता था। उस बेचारे पर ललिता की बड़ी ममता थी। जब कभी वह भजन गाकर भिक्षा माँगता था तो ललिता उसे एक रुपया दिया करती थी। एक रुपया प्राप्त होने पर उसके आनंद का ठिकाना न रहता था। ललिता को वह सैकड़ों आशीर्वाद देता था और वह बड़े चाव से उन आशीर्वादों को सुनती थी। फकीर कहता था—'ललिता उस जन्म की मेरी माँ है!' पहली दृष्टि पड़ते ही फकीर उसे अपनी माँ समझने लगा है। वह बड़े ही करुण स्वर में उसे अपनी माँ कहकर पुकारता है। आज भी उसने आते ही माँ को पुकारा—'ओ माँ! मेरी माँ! तुम आज कहाँ हो?'

आज इस प्रकार अपने बेटे की आवाज सुनते ही ललिता कठिनाई में पड़ गई। आखिर वह इस समय उसको रुपया दे तो कहाँ से दे? इस समय शेखर घर में ही मौजूद होंगे और वह उनके सामने रुपया लाने जाए कैसे? वह उससे नाराज है! कुछ समय सोचते रहने के बाद वह अपनी मामी के पास गई। अभी-अभी उसकी मामी की बकझक नौकरानी से हो गई थी। इस कारण वह मुँह लटकाए खाने की तैयारी कर रही थीं। ऐसी स्थिति से ललिता को कुछ कहने की हिम्मत न हुई। वह वापस चली आई और किवाड़ की ओट से देखा कि बूढ़ा फकीर चौंतरे पर अब भी बैठा है और भजन गाने में मस्त है। ललिता के हृदय में एक खलबली सी मची थी। आज तक उसने इस फकीर को निराश नहीं लौटाया था, इसलिए वह आज भी नहीं लौटाना चाहती। उसका मन क्षुब्ध हो रहा था।

भिखारी ने फिर एक बार 'माँ' कहकर पुकारा।

इसी बीच अन्नाकाली दौड़ती हुई आई और उसने सूचना दी, ''दीदी, तुम्हारा बूढ़ा बेटा बड़ी देर से आवाज लगा रहा है!''

ललिता ने कहा, ''मेरी अच्छी अन्नो! जरा सुन तो! अगर तू मेरा एक जरूरी काम कर दे तो मैं तुझे अच्छी-अच्छी चीजें दूँगी। तू जल्दी से चली जा, शेखर भैया से एक रुपया ले आ।''

अन्नाकाली तेजी से दौड़ती हुई गई और उसने एक रुपया लाकर ललिता को दिया।

ललिता ने पूछा, ''शेखर दादा ने रुपया देते समय कुछ कहा था?''

''कुछ भी नहीं। केवल यही कहा कि वास्केट की जेब से निकाल लो।''

''मेरे विषय में तो कुछ नहीं कहते थे?''

''नहीं, कुछ भी नहीं।'' कहकर वह खेलने में लग गई।

रुपया लेकर ललिता ने उस बूढ़े भिखारी को दिया और चली गई। आज उसने आशीर्वाद तक न सुने। पता नहीं क्यों उसे भय लग रहा था।

इधर कई दिनों से ताश जोरों से जमते थे, लेकिन ललिता आज खेलने नहीं गई। वह सिर दर्द का बहाना करके, मुँह ढाँके पड़ी रही। वास्तव में उसे कुछ भी अच्छा न लगता था। उसका चित्त परेशान था।

दोपहर के पश्चात् उसने अन्नाकाली को बुलाकर पूछा, ''अन्नो। आजकल तू अपने शेखर दादा से पढ़ने नहीं जाती?''

''जाती क्यों नहीं? रोज जाती हूँ।''

ललिता, ''दादा मेरे बारे में कुछ नहीं पूछते?''

अन्ना, ''नहीं। हाँ, उन्होंने पूछा था कि तुम ताश खेलने दोपहर को जाती हो या नहीं?''

बेचैनी के साथ ललिता ने कहा, ''फिर तूने क्या कहा?''

अन्ना, ''यही कि तुम चारु के यहाँ रोज ताश खेलने जाती हो।''

शेखर दादा ने पूछा, ''तो खेलता कौन-कौन है?''

मैने कहा, ''चारु दीदी, तुम, मौसी और चारु के मामा। अच्छा दीदी, तुम सब में अच्छा कौन खेलता है? तुम या चारु के मामा? मौसीजी तो कहा करती हैं कि तुम अच्छा खेलती हो।''

यह सुनकर ललिता के मानो आग लग गई। वह डाँटकर कहने लगी, ''यह सब तूने क्यों कहा? पाजिन कहीं की। तू हर बात में आधी खिचड़ी पकाया करती है। चली जा मुँहजली, अब मैं तुझे कभी कुछ न दूँगी।'' यह कहकर ललिता वहाँ से चली गई।

ललिता के इस प्रकार बदलते हुए भावों से अन्नाकाली हैरान हो गई। उसकी कच्ची बुद्धि ने यह न समझा कि ललिता क्यों एकदम बिगड़ गई।

दो दिन से ताश का अड्डा नहीं जमता। ललिता के न आने से मनोरमा का खेल बंद हो गया है। मनोरमा के हृदय में यह संदेह भावना जाग्रत हो चुकी थी कि गिरींद्र ललिता की तरफ आकर्षित हो रहा है। उस पर रिझकर गिरींद्र बेचैन होता जा रहा है। मनोरमा ने देखा कि यह दो दिन गिरींद्र ने कितनी परेशानी और बेचैनी में काटे हैं। यही नहीं, उसने बाहर घूमने जाना तक बंद कर दिया है। अब वह केवल कमरे में ही इधर-उधर उठता-बैठता दिन काट देता है।

तीसरे दिन दोपहर के समय उसने बहिन से कहा, ''बहिन, क्या खेल आज भी न होगा?''

मनोरमा ने कहा, ''कैसे होगा, गिरींद्र? खेलनेवाले ही पूरे नहीं हैं। आओ, आज तीन आदमी ही खेलें।''

मनोरमा की इस बात को सुनकर गिरींद्र का उत्साह भंग हो गया। वह बोला, ''कहीं तीन आदमी में भी खेल होता है? उस घर की लड़की, जिसका नाम ललिता है, उसे बुला लो न जीजी।''

मनोरमा, ''वह नहीं आएगी।''

गिरींद्र उमंग में तुरंत बोल उठा, ''क्यों नहीं आएगी? उसके घरवालों ने मना कर दिया है, या अपने से?''

''नहीं, वह अपने आप नहीं आती। उसके मामा-मामी के ऐसे भाव नहीं है।''

गिरींद्र के मुँह पर प्रसन्नता की झलक दौड़ गई। वह बोला, ''फिर तो तुम्हारे जाने भर की देर है। जरा जाकर कह दोगी, तुरंत आ जाएगी!!'' यह बात गिरींद्र ने कह तो दी, पर अपने मन में संकोच कर रहा था।

उसके हृदय की बात ताड़कर मनोरमा ने हँसते हुए कहा, ''अच्छा अभी जाकर बुला लाती हूँ।'' यह कहकर वह ललिता के घर गई और उसे पकड़कर साथ ही ले आई।

आज फिर ताश का अड्डा जमा। आज वास्तव में ताश खूब जमा। ललिता की जीत होती रही। दो घंटे तक खेल बहुत ही बढ़िया जमा रहा और सभी लोग दत्तचित्त थे। उसी समय अन्नाकाली दौड़ती हुई आई और ललिता का हाथ पकड़कर घसीटते हुए बोली, ''दीदी, जल्दी चलो, शेखर दादा बुलाते हैं।''

शेखर का नाम सुनते ही ललिता का चेहरा पीला पड़ गया। उसने ताश छोड़ दिया और पूछा, ''क्या दादा आज काम पर नहीं गए?''

''मुझे क्या मालूम? शायद आज जल्दी आ गए हैं।''

ललिता ने मनोरमा की ओर कुण्ठित भाव से देखकर कहा, ''मौसी, मैं जाती हूँ।''

उसका हाथ पकड़कर मनोरमा ने कहा, ''नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। अभी दो-चार हाथ और खेल लो।''

परेशान होकर ललिता ने कहा, ''मौसी अब न खेल सकूँगी। यदि जरा भी देर हो गई, तो वह नाराज हो जाएँगे।'' इतना कहकर वह दौड़ती हुई चली गई।

गिरींद्र ने पूछा, ''यह शेखर दादा कौन हैं?''

मनोरमा, ''वे इसी सामनेवाले बड़े महल में रहते हैं।''

गरदन हिलाते हुए गिरींद्र ने कहा, ''वह महल? तब तो शायद नवीन बाबू के रिश्तेदार हैं।''

मनोरमा ने हँसते हुए कहा, ''कैसे रिश्तेदार। ललिता के मामा के मकान तक को वह बुड्ढा हड़प लेने के लिए तैयार है।''

बड़े ही आश्चर्य के साथ गिरींद्र बहिन की तरफ देखता ही रहा।

मनोरमा ने सारी कहानी सुनानी प्रारंभ की, किस तरह से आर्थिक कठिनाइयों के कारण गुरुचरण बाबू की मंझली पुत्री की शादी रुकी हुई थी। नवीनराय ने काफी ब्याज पर उनका मकान रेहन रख लिया। अब तक भी वह रुपया अदा नहीं हुआ और नवीनराय यह मकान हड़प ही लेंगे। वह इसी घात में है भी।

सारी कहानी सुना चुकने के बाद मनोरमा ने यह भी कहा कि उस बूढ़े की हार्दिक इच्छा यह है कि बेचारे गुरुचरण बाबू का मकान सत्यनाश करके, उसी स्थल पर शेखर के लिए बहुत ही सुंदर विशाल महल बनवाए। दो लड़कों के लिए अलग-अलग मकान हैं, परंतु तीसरे के लिए नहीं है।

सभी बातें सुनकर गिरींद्र को बहुत दु:ख हुआ और उसको गुरुचरण बाबू की दशा पर बहुत तरस आया। वह बोला, ''जीजी,अभी तो गुरुचरण बाबू के और भी लड़कियाँ हैं न? उनका कैसा काम-काज होगा?''

मनोरमा ने उत्तर दिया, ''उनकी कन्याएँ तो हैं ही, उसके सिवा उनकी भाँजी ललिता भी तो है। उस अनाथ ललिता का पूरा बोझ इस बेचारे उसके मामा पर है। लड़कियों की उम्र काफी हो आई है। एक-दो वर्ष में ही उनका विवाह हो ही जाना चाहिए। फिर साथ ही, उन्हें अपने समाज से मदद मिलने की कोई आशा नहीं, बल्कि समाज से निकाल देने वाले अनेक हैं। प्रथा के अनुसार चलने पर, तुरंत समाज से अलग कर देते हैं। हमारा ब्रह्मसमाज तो इन सबके समाज से लाख दर्जे अच्छा है, गिरींद्र।''

गिरींद्र चुप ही रहा। मनोरमा फिर कहने लगी, ''उस दिन ललिता की मामी मेरे पास ललिता के लिए सोच-विचारकर रो रही थी। क्या होगा? कैसे होगा? कुछ भी तो ठिकाना नहीं है। उसके पाणिग्रहण के शोक में गुरुचरण बाबू का खाना-पीना तक हजम नहीं होता। गिरींद्र भैया! तेरे तो बहुत से जान-पहचानवाले मुंगेर में होंगे। क्या कोई तेरा मित्र ऐसा नहीं है, जो ललिता की सुंदरता और गुणों को देखकर उससे शादी करने के लिए तैयार हो जाए? वास्तव में ललिता के समान गुणशील तथा विदुषी लड़की मिलना कठिन है। लाखों लड़कियों में वह एक ही रूपवती है।''

गिरींद्र ने दु:खपूर्ण झूठी हँसी हँसकर कहा, ''ऐसी जान-पहचानवाला कहाँ पा सकूँगा, दीदी। फिर भी, हाँ, इस कार्य में धन देकर उनकी सहायता कर सकता हूँ।''

गिरींद्र के पिता ने डॉक्टरी से अथाह धन इकट्ठा किया था। उस संपूर्ण धन का एकमात्र अधिकारी गिरींद्र ही था।

मनोरमा, ''तो क्या तू रुपए उधार देगा?''

गिरींद्र ने कहा, ''उधार क्या दूँगा, जीजी, पर हाँ, वह जब दे सकेंगे, दे देंगे, और यदि न दे सकेंगे, तो भी कोई हर्ज नहीं।''

आश्चर्य में पड़कर मनोरमा ने कहा, ''आाखिर इस तरह से उन्हें रुपए दे देने पर तुझे क्या लाभ होगा? वह लोग

न हमारी बिरादरी के हैं और न समाज के। फिर तुम ही बताओ कि इस प्रकार कौन रुपए दे देता है।''

मनोरमा की ओर देखकर गिरींद्र ने हँसकर कहा, ''समाज के नहीं हैं तो न सही, किंतु अपने ही देश के, बंगाली तो हैं। उनके पास टके नहीं है और मेरे पास रुपयों में काई जम रही है। जीजी, तुम एक बार कहो तो उनसे। यदि वे रुपया लेना चाहें, तो मैं देने को तैयार हूँ। फिर ललिता न तो उनकी ही सगी है और न संबंधिनी है। मैं उसकी शादी का पूरा खर्च ही दे दूँगा। उस भोली लड़की के काम के लिए मैं पूरा भार सहन कर लूँगा।''

गिरींद्र की यह बातें सुनकर न तो मनोरमा को आनंद मिला और न संतोष ही हुआ। हालाँकि मनोरमा के घर से कुछ नहीं जाता था, फिर भी स्त्रियों के स्वभावानुसार, पराए आदमी को रुपए बिना प्रयोजन देते देखकर उसे जरा भी चैन न था, बल्कि वह तो उसमें रोड़े अटका देना चाहती थी।

चारुबाला चुपचाप यह सब बातें सुन रही थी। गिरींद्र की यह रुपए से मदद करने की बात सुनकर, उनका हृदय खुशी से नाच उठा था। वह कहने लगी, ''मामा, तुम ऐसा ही करो। मैं जाकर मौसी से कह आती हूँ।''

मनोरमा ने उसे धमकाकर कहा, ''चुप बैठ, चारु। ये बातें बच्ची के मुँह से, बड़ों के बीच में अच्छी नहीं लगती। ललिता की मामी से जो भी कहना होगा, मैं जाकर कह दूँगी।''

गिरींद्र, ''ऐसा ही करो, दीदी। गुरुचरण बाबू तो भले आदमी हैं, ऐसा लगता है।''

कुछ देर रुककर मनोरमा ने फिर कहा, ''मैं क्या, सभी लोग यह कहते हैं कि ये दोनों स्त्री-पुरुष बड़े सज्जन हैं। गिरींद्र इस बात का हमें दु:ख है। बहुत मुमकिन है कि उन लोगों को घर त्यागकर सड़क पर ही आकर खड़ा होना पड़े। इसके भय से तूने देख ही लिया कि ललिता ने ज्यों ही शेखर का नाम सुना, तुरंत दौड़ी हुई गई। ललिता ही क्या, बल्कि उसके यहाँ के सभी लोग शेखर के बंधन में हैं। कुछ भी कोशिश क्यों न की जाए, जब एक बार नवीनराय के चुंगल में कोई फंसा, तो उसको निकालना कठिन ही है।''

मनोरमा की ओर देखते हुए गिरींद्र ने एक बार फिर कहा, ''हाँ, तुम फिर उनसे जाकर यह कहोगी न?''

मनोरमा, ''अच्छा अवश्य कहूँगी। यदि तू अपनी सहायता से किसी गरीब का उपकार कर सके, तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है।''

कुछ समय रुकने के पश्चात् मनोरमा ने मुस्कराकर पूछा, ''अच्छा, गिरींद्र यह तो बता कि तू उसे इस प्रकार मदद देने के लिए व्यग्र क्यों हो रहा है?''

''दीदी, व्यग्रता की कौन सी बात है? यह तो हम सबका धर्म है कि किसी मुसीबत में ग्रस्त व्यक्ति की, जिस प्रकार बन सके, मदद करें।'' यह कहकर गिरींद्र कुछ लज्जित सा हो गया और आगे कुछ न कहकर वह कमरे से बाहर चला गया, परंतु कुछ ही समय बाद वह फिर लौटकर वहीं आ बैठा।

मनोरमा ने कहा, ''तू फिर आ गया।''

मुस्कराते हुए गिरींद्र ने कहा, ''मुझे ऐसा लगता है कि शायद तुम जो कुछ भी करुणा-युक्त गाथा गाती हो, उसमें सत्यता का बहुत कम अंश है।''

आश्चर्यचकित होकर मनोरमा ने पूछा, ''क्यों?''

गिरींद्र ने कहा, ''जिस लापरवाही से मैंने ललिता को रुपए खर्च करते हुए देखा है, उससे गरीबी का कोई लक्षण नहीं जान पड़ता। दीदी, तुम्हीं देखो न, अभी उस दिन सभी लोग थिएटर देखने गए थे। ललिता गई नहीं थी, फिर भी दस रुपए उसने भेजे थे। चारुबाला इसकी गवाह है। जिस प्रकार वह खर्च करती है, उससे यह अनुभव होता है कि उसका खर्च बीस-पच्चीस रुपए से कम में न चलता होगा।''

मनोरमा ने इस बात पर एकाएक यकीन नहीं किया और चारुबाला की ओर देखा।

चारुबाला ने कहा, ''सच है माँ। शेखर बाबू ललिता को रुपए देते हैं, यह नई बात नहीं है। बाल्यावस्था से ही वह शेखर की अलमारी से रुपए ले आती है। शेखर बाबू कुछ भी नहीं कहते।''

मनोरमा ने कहा, ''यह बात शेखर को ज्ञात है?''

''हाँ, उन्हें सब पता है। उनके सामने ही ताला खोलकर लाती है। पिछले महीने अन्नाकाली के गुड्डे के विवाह के समय जो धूमधाम हुई थी और इतने अधिक रुपए खर्च हुए थे, वह सब किसने दिए थे? सारा खर्च ललिता ने ही दिया था।''

लंबी साँस छोड़कर मनोरमा ने कहा, ''भैया, मैं इन सबके बारे में कुछ नहीं जानती, किंतु इतना अवश्य जानती हूँ कि नवीनराय की भाँति उसके लड़के नीच नहीं हैं। सभी लड़के माँ के स्वभाव के हैं। इसीलिए उसमें दया-ममता भरी हुई है। इसके अतिरिक्त ललिता भी बड़ी नेक लड़की है। सभी उससे स्नेह करते हैं। बचपन से ही वह शेखर के पास रहती है। वह शेखर को भैया कहती है और शेखर पर भी उसका गहरा अनुराग है। अच्छा चारु यह तो बता, क्या शेखर बाबू की शादी इसी माघ में होनेवाली है? सुना है, इस रिश्ते से बुड्ढे को अच्छी रकम हाथ लगेगी।''

चारुबाला ने कहा, ''हाँ माँ, इसी माघ में शेखर भैया का ब्याह होगा। बात तय हो चुकी है।''

❑

# पाँच

गुरुचरण बाबू बहुत ही मिलनसार व्यक्ति थे। किसी भी छोटे-बड़े व्यक्ति से वे नि:संकोच बातें कर सकते थे। अपनी मिलनसार आदत के कारण ही गिरींद्र के साथ दो-तीन दिन बातें होने पर ही उनकी गहरी मित्रता हो गई थी। वह बड़े ही दृढ विश्वासी थे। सरल स्वभाव के कारण वे चतुराई को कम महत्त्व देते थे। वाद-विवाद में तर्क-वितर्क होने पर यदि हार भी जाते थे, तो भी किसी प्रकार के रोष की रेखा उनके चेहरे पर न झलकती थी।

गिरींद्र के साथ अब उनकी बहुत सी बातें होती थीं। गुरुचरण बाबू अक्सर गिरींद्र को संध्या समय की चाय के लिए आमंत्रित करते थे। दफ्तर से आकर हाथ-मुँह धोते-धोते रात हो आती और वे ललिता से कहते, ''बेटी, क्या चाय तैयार है?'' फिर तुरंत अन्नाकाली की पुकार होती और कहते कि जा, अपने गिरींद्र मामा को बुला ला। गिरींद्र के आने पर वहाँ रौनक और ताजगी आ जाती थी और वाद-विवाद छिड़ जाता था।

कभी-कभी ललिता चुपचाप मामा की बगल में बैठकर सबकुछ सुनती रहती। जब वह आकर बैठ जाती, तो गिरींद्र के तर्क बहुत ही विद्वत्तापूर्ण होते। हृदय में आनंद की लहरों के उमड़ाव के साथ वह युक्तियों को जुटाता चला जाता। मुख्य रूप से उनके वाद-विवाद का विषय, आजकल की समाज-व्यवस्था ही होता था। आधुनिक समाज की हीनता, जर्जरता, असमानता और ऐसे दुराचारी समाज से घृणा व्यक्त की जाती थी। इन आरोपों में वास्तविकता थी। अत: और कुछ प्रमाण देने की आवश्यकता ही क्या थी। वे सब बातें समाज द्वारा सताए हुए गुरुचरण बाबू के जीवन से पूरी तरह मिलती थीं। अंत में गुरुचरण बाबू पूर्ण रूप से समर्थन करते हुए कहते, ''गिरींद्र तुम बिल्कुल सत्य कहते हो। इसमें असत्य है ही क्या? कौन भला आदमी यह नहीं चाहता कि अपनी पुत्री का शुभ विवाह अच्छे व्यक्ति से ठीक अवसर पर करे। फिर भी ऐसा क्या सबके लिए मुमकिन है? इसके सिवा, समाज यह कहने से नहीं चूकता कि तुम्हारी लड़की सयानी हुई, ब्याह करो, मगर इतना कहने से ही तो लड़की का ब्याह नहीं हो जाता। इस कार्य में मदद करने की कौन कहे, तरह-तरह की बातें सुननी पड़ती हैं। गिरींद्र, अधिक क्या कहूँ, तुम मेरी ही बात को देखो, लड़कियों के ब्याह के कारण ही मेरा मकान तक बिका जा रहा है। इसका ब्याज तक दे सकने में असमर्थ हूँ, इसको कर्ज से मुक्त करा सकना कठिन कार्य है। दो दिन पश्चात् ही शायद दर-दर का भिखारी हो जाना पड़े। मैं ठीक कहता हूँ या नहीं, गिरींद्र ऐसे समय में मुझे कोई भी सहारा न देगा, बल्कि सारा समाज बहिष्कार करेगा।''

इस प्रकार का वाद-विवाद उठ आने पर गिरींद्र चुपचाप ही सुना करता। गुरुचरण बाबू उसी बहाव में कहते, ''भैया, जो भी तुमने कहा, बिल्कुल सत्य है। ऐसे समाज को त्यागकर जंगल में रहने में ही भलाई है। कुछ भी कठिनाई क्यों न हो, फिर भी शांति मिलेगी। गला दबोचने और मनुष्यता को भंग करनेवाले समाज में रहना हमारे लिए ठीक नहीं। यह समाज धनवानों का ही है, मेरे जैसे गरीब का नहीं। अच्छा है, वही लोग मौज से रहें, हमारी आवश्यकता ही यहाँ नहीं।'' यह कहते-कहते वह एकदम मौन हो जाते थे।

ललिता प्रतिदिन इन उद्गारपूर्ण युक्तियों को ध्यानपूर्वक सुनती रहती थी। केवल इतना ही नहीं, बल्कि रात को निद्रा आने के पूर्व इन्हीं तर्कों पर विचार किया करती थी। गिरींद्र की सभी युक्तियाँ उसके हृदय में समा जाती थीं। मन ही मन वह सोचने लग जाती कि गिरींद्र बाबू का कहना अक्षरश: सत्य है।

अपने मामा से ललिता का अटूट प्रेम था। उसके मामा के प्रति गिरींद्र जो कुछ भी कहता, उसे नितांत सत्य समझती थी। उसे यह भी पता था कि उसके मामा की परेशानी तथा चिंताएँ उसी के कारण बढ़ी हैं। अन्न जल भी

उन्होंने छोड़ दिया है। आज उसके मामा जो ये सब कष्ट झेल रहे हैं, यह सब क्यों? क्योंकि समाज उन्हें जाति से बाहर कर देना चाहता है। इस सबका कारण एकमात्र यही न है कि वे मेरी शादी करने में असमर्थ हैं। विचारकर ललिता ने सोचा यदि आज किसी प्रकार मेरी शादी हो जाए और अभाग्यवश मैं यदि कल विधवा होकर फिर मामा के पास आ जाऊँ तो मामा को जाति से अलग कर दिया जाएगा? इन तर्कों में उसे कोई भी सार न दिखाई देता।

गिरींद्र जो कुछ भी ललिता के मामा के प्रति श्रद्धा और सहानुभूति दिखाता था और जो भी वह कहता था, उस सबके प्रति श्रद्धा दिखाने और अपनी सहमति जताने से वह बाज न आती। ऐसा करने के सिवा उसके सामने दूसरा मार्ग न था। गिरींद्र के प्रति उसकी श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। धीरे-धीरे उसने भी संध्या की बेला का इंतजार करना शुरू कर दिया। उसकी उत्कण्ठा अब और भी बढ़ गई थी।

शुरू में गिरींद्र बातों में ललिता को 'आप' शब्द से संबोधित करता था, परंतु एक दिन गुरुचरण बाबू ने मना कर दिया। कहा, ''ललिता तुमसे छोटी है, इसीलिए 'आप' न कहकर 'तुम' कहा करो।'' अब वह ललिता को तुम शब्द से संबोधित करने लगा।

गिरींद्र ने ललिता से पूछा, ''तुम चाय नहीं पीतीं?''

ललिता ने कुछ उत्तर न देकर सिर नीचा कर लिया। गुरुचरण बाबू ने उसकी ओर से उत्तर दिया, ''शेखर ने इसको चाय पीने से मना कर दिया है। उसकी राय है कि स्त्रियों को चाय नहीं पीनी चाहिए।''

गिरींद्र को यह बात अच्छी न लगी, इस बात को ललिता ने ताड़ लिया।

आज शनिवार है। आज के दिन काफी समय तक यह मजेदार मजलिस लगी रहती है। चाय पीना हो चुका था, वार्त्तालाप जारी था। गुरुचरण बाबू आज कुछ अनमने से थे। ऐसा लगता था कि आज की बातचीत उन्हें अच्छी न लग रही थी। बीच-बीच में परेशानी का अनुभव कर वह चुप रह जाते थे।

गिरींद्र ने यह देखकर पूछा, ''ऐसा प्रतीत होता है कि आप को कुछ शारीरिक दु:ख है। चेहरे पर उदासी है। क्या दफ्तर में कुछ गड़बड़ है?''

हुक्के की निगाली मुँह से निकालते हुए उन्होंने कहा, ''नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, शरीर भी गड़बड़ नहीं है।'' यह कहते हुए गुरुचरण बाबू ने मुँह ऊँचा करके गिरींद्र की ओर दृष्टि डाली। सरल स्वभाववाले गुरुचरण बाबू की आंतरिक चिंताएँ तथा हृदय के ज्वलित उद्‌गार उनके मुख पर झलक रहे थे, इसका वह खुद अनुभव ही न कर सके थे।

ललिता पहले उन लोगों के वार्त्तालाप को केवल सुना ही करती थी, परंतु अब वह तर्क-वितर्क में भाग लेने लगी है। मामा की परेशानी को वह भी पूर्ण रूप से समझ गई। उसने पूछा, ''हाँ, मामा, ऐसा मुझे भी लग रहा है कि आपको कोई बात हृदय में कष्ट दे रही है!''

उसकी यह बात सुनकर गुरुचरण बाबू को थोड़ी सी हँसी आ गई, और सरल भाव से स्वीकार करते हुए बोले, ''बेटी, सत्य है, आज मेरी दशा ठीक नहीं है!''

यह बात सुनकर गिरींद्र एवं ललिता दोनों ही टकटकी बाँधकर कष्ट का कारण जान लेने के लिए उनके चेहरे की तरफ देखने लगे।

गुरुचरण बाबू ने कहा, ''नवीन दादा मेरे विषय में सबकुछ जानते हैं! फिर भी उन्होंने तमाम लोगों के सामने सड़क पर खड़े होकर बहुत सी भली-बुरी बातें सुना डालीं। खैर, उनका इसमें दोष ही क्या? छह-सात माह बीत गए, पर उन्हें मूल की कौन कहे, एक पैसा सूद तक का नहीं दे पाया हूँ!''

ललिता सबकुछ तुरंत समझ गई। इस बात को खत्म करने के लिए वह व्यग्र हो गई। उसे यह भय होने लगा कि कहीं उसके भोले मामा घरेलू बातों को दूसरों के सामने बिना सोचे-समझे ही गाने लगेंगे; क्योंकि उन्हें दु:ख में यह भी स्मरण नहीं रहता कि किसके सामने कौन बात कहनी चाहिए और किसके सामने नहीं! गिरींद्र के सामने घरेलू बातें होना वह ठीक न समझती थी। अत: उसने कहा, ''मामा! इन सब बातों की चिंता में बेकार मत पड़ो, ये सब बातें तो बाद की हैं, बाद में होंगी!''

ललिता के इस इशारे की ओर गुरुचरण बाबू का ध्यान भी नहीं गया। वे बड़े ही विषादयुक्त भाव से फिर कहने लगे, ''बाद में क्या होगा, बेटी? हाँ, गिरींद्र भैया, तुम देखते हो कि मेरी बेटी इन सब चिंताओं में मुझे ग्रस्त नहीं देखना चाहती। परंतु मेरी प्यारी बेटी! तेरे मामा के इन सभी कष्टों को तो बाहरी लोग नहीं देखते हैं।''

गिरींद्र ने पूछा, ''नवीन बाबू ने क्या कहा?''

ललिता को जरा भी पता न था कि गिरींद्र उनकी घरेलू परिस्थितियों से परिचित है। इसी कारण गिरींद्र का यह प्रश्न सुनकर उसने लज्जा का अनुभव किया और इस असंगत प्रश्न को सुनकर उसे मन-ही-मन उस पर गुस्सा भी आ गया।

गिरींद्र के प्रश्न के उत्तर में गुरुचरण बाबू ने सभी बातें खोलकर कह दीं। काफी दिनों से नवीनराय की पत्नी अजीर्ण रोग से ग्रसित हैं। इलाज में कोई कमी न थी। रोग तो था ही, पर इधर वह भयंकर हो चला है। पुराना रोग हो जाने के कारण डॉक्टरों ने राय दी है कि हवा-पानी बदलने के लिए कहीं बाहर स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान पर जाना चाहिए। इसी काम के लिए नवीनराय को पैसों की आवश्यकता थी, अत: बड़े ही जोरों से उन्होंने सब रुपया अदा कर देने का तकाजा किया है। गुरुचरण बाबू के सामने यह कठिन समस्या है, आखिर वह इतनी जल्दी रुपयों का प्रबंध कैसे करें?

गुरुचरण बाबू की इन बातों को सुनकर गिरींद्र थोड़े समय तक चुप रहा और फिर बहुत ही नम्र भाव से उसने मधुर स्वर में कहा, ''इधर कई दिनों से मैं आपसे कुछ कहना चाहता था, पर संकोचवश कह न सका। आज यदि आपकी आज्ञा हो तो कुछ कहूँ?''

गुरुचरण बाबू ने हँसते हुए कहा, ''यह क्या बात है, गिरींद्र! किसी को भी मुझसे बात करने में संकोच नहीं होता। तुमको आज्ञा क्या दूँ, तुम बेरोक-टोक कहो!''

गिरींद्र ने कहा, ''जीजी से एक दिन सुना था कि नवीन बाबू बहुत अधिक सूद पर रुपए उधार देते हैं। उनसे रुपए लेकर ही आप गहरी परेशानी के जाल में पड़ गए। मैंने यह सोचा कि आपकी मदद में अपनी धनराशि लगाऊँ, जो कि बैंकों में पड़ी हुई है। वह किसी काम में नहीं आती, साथ ही इस समय नवीन बाबू को आवश्यकता भी है। आपको भी कर्ज से छुटकारा मिल जाएगा!''

गिरींद्र की यह बात सुनकर गुरुचरण बाबू और ललिता दोनों उसकी ओर एकटक देखने लगे। संकोच भाव से गिरींद्र ने फिर कहना शुरू किया, ''इस समय इन रुपयों की मुझे बिलकुल कोई जरूरत नहीं है! यदि मेरे रुपए आपके काम में लग जाएँ तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूँगा। इस धन को आप अपनी सुविधानुसार दे दीजिएगा। मुझे किसी प्रकार की जल्दी नहीं है। नवीन बाबू को आवश्यकता है, उन्हें भी समय पर रुपए मिल जाएँगे।''

गुरुचरण बाबू ने कहा, ''सारा रुपया तुम दोगे?''

गिरींद्र बोला, ''हाँ! इससे उनका भला भी हो जाएगा...।''

इस बात के उत्तर में गुरुचरण बाबू कुछ कहने ही जा रहे थे कि अन्नाकाली तेजी से दौड़ती हुई वहाँ आई और

बोली, ''शेखर दादा ने तुरंत कपड़े पहनकर, सज-धजकर तैयार होने को कहा है, दीदी! वह सब लोग आज नाटक देखने जा रहे हैं।'' यह कहकर वह जिस प्रकार तेजी से आई थी, उसी प्रकार उलटे पाँव भाग गई। उस लड़की के उत्साह को देखकर गुरुचरण बाबू मुसकराए, परंतु ललिता उसी स्थान पर बैठी रही।

क्षण भर बाद ही अन्नाकाली ने फिर आकर कहा, ''अभी तक तुम बैठी हो, जीजी? उठो, तुरंत तैयार हो। सब लोग तुम्हारा रास्ता देख रहे हैं।''

इस बार भी ललिता पूर्ववत् उसी स्थान पर बैठी रही। अन्नाकाली की प्रसन्नता को देखकर गुरुचरण बाबू को हँसी आई और ललिता के सिर पर हाथ फेरते हुए वे बोले, ''जाओ बेटी, जाओ! अब तनिक भी देर न करो। वे सब लोग शायद खड़े-खड़े तुम्हारा ही रास्ता देख रहे हैं।''

लाचारीवश उसे उठना ही पड़ा, परंतु जाते समय उसकी कृतज्ञ दृष्टि गिरींद्र पर पड़ रही थी। इस कृतज्ञता भरी दृष्टि को गिरींद्र पूर्ण रूप से समझ गया था।

थोड़ी देर में ही खूब बनाव-शृंगार के साथ, पान देने के बहाने फिर एक बार वह बाहर के कमरे में आई, परंतु उस समय गिरींद्र वहाँ से चला गया था। केवल गुरुचरण बाबू तकिए के सहारे लेटे थे। उनकी बंद आँखों के कोनों पर आँसुओं की रेखा झलकती थी। ललिता तुरंत समझ गई कि यह खुशी के आँसू हैं। यह जानकर उनका ध्यान भंग करना ठीक न समझकर वह चुपचाप ज्यों-की-त्यों लौट गई।

कमरे से बाहर आकर ललिता सीधे शेखर के घर पहुँची। अपने मामा की दशा को सोचकर उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए थे। अन्नाकाली उस समय वहाँ न थी, वह पहले ही जाकर गाड़ी में बैठ गई थी। कमरे के ठीक सामने शेखर शायद खड़े-खड़े ललिता की ही बाट जोह रहा था। सिर उठाकर देखने पर उसे ललिता की भरी आँखें दिखाई दीं। इधर कई दिनों से ललिता को न देखा था, इसीलिए शेखर और अधिक परेशान था। ललिता के आँसुओं को देखकर शेखर का हृदय भी द्रवित हो आया और उसने ललिता से पूछा, ''यह क्या? ललिता, क्या तुम रो रही हो? क्यों, क्या बात है?''

ललिता ने सिर हिलाकर अपना मुँह नीचा कर लिया।

कई दिनों से ललिता को न देखने के कारण तरह-तरह की भावनाओं का जागरण शेखर के हृदय में हो रहा था। वह बड़े ही स्नेह के साथ ललिता का मुँह ऊपर उठाकर बोला, ''अरे, सचमुच ही तुम रो रही हो! आखिर बताओ तो क्या हुआ, ललिता?''

शेखर की इस सहानुभूति तथा प्रेम भाव को देखकर वह अपने को सँभाल न पाई। वह जहाँ खड़ी थी, शेखर की ओर पीठ करके वहीं पर बैठ गई और मुँह ढाँपकर जोर-जोर से रोने लगी। शेखर सहानुभूति का प्रदर्शन करता रहा।

❑

# छह

नवीन ने मूल तथा सूद जोड़कर पूरे-पूरे रुपए गुरुचरण बाबू से लिए। अब कुछ भी बाकी नहीं रह गया। तमस्सुक वापस करते समय उन्होंने गुरुचरण बाबू से पूछा, ''कहो गुरुचरण बाबू, यह इतने रुपए तुम्हें किसने दिए?''

गुरुचरण बाबू ने बड़े ही नम्र भाव से कहा, ''भैया, यह कुछ न पूछिए। जिसने रुपए दिए हैं, उसने किसी से बताने के लिए मना किया है।''

नवीनराय अपने रुपए पाकर तनिक भी खुश नहीं हुए। रुपए वापस लेने की न तो उनकी इच्छा ही थी और न वह गुरुचरण बाबू से ऐसी उम्मीद ही करते थे। उनके हृदय में तो एक दूसरी ही धारणा थी कि वह गुरुचरण बाबू का मकान गिराकर उस पर अपना दूसरा महल खड़ा करेंगे। वह इच्छा उनकी पूरी न हुई। इसी कारण वह आवेश में आकर व्यंग्यपूर्वक कहने लगे, ''क्यों न मनाही की होगी, भैया गुरुचरण! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, सारा दोष और लगाव तो मेरा है, जो मैंने तुमसे रुपयों का तकाजा किया। यही कलियुग की उलटी माया है।''

दु:खपूर्ण शब्दों में गुरुचरण बाबू ने कहा, ''भैया! आप ऐसा क्यों कहते हैं? मैंने तो केवल आपका रुपया अदा किया है। आपकी दया का बोझ मेरे ऊपर सदैव रहेगा, मैं उससे कभी उऋण न होऊँगा।''

नवीन बाबू यह सुनकर मुसकराए। वे बड़े ही पक्के जो ठहरे! यदि वह ऐसे पक्के न होते तो केवल गुड़ के ही व्यापार से इतनी अधिक धनराशि न इकट्ठा कर पाते। वे बोले, ''भैया! तुम भी क्यों न कहो, परंतु ऐसे विचार होने पर वास्तव में पूरा रुपया इस प्रकार न अदा करते! मैंने तो केवल रुपए माँगे थे, वह भी तुम्हारी भाभी की बीमारी के लिए। अच्छा खैर, यह तो बताओ कि कितने रुपए सूद पर मकान को रेहन रखा है?''

''न तो घर ही रेहन किया और न ब्याज ही कुछ तय हुआ है!''

नवीनराय को तनिक विश्वास न हुआ। उन्होंने पूछा, ''अरे! क्या इतने रुपए बिना लिखा-पढ़ी?''

''हाँ दादा,ऐसा ही है। बहुत ही सज्जन लड़का है। ऐसा जान पड़ता है कि दया की मूर्ति है!''

''लड़का? कौन सा लड़का?''

गुरुचरण बाबू ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। जो कुछ कह डाला, वह नहीं कहना चाहिए था।

गुरुचरण बाबू को चुप देखकर नवीनराय समझ गए कि वह कुछ भी बताना ठीक नहीं समझते। इस कारण मुसकराते हुए बोले, ''अच्छा, बताना मना है तो न बताओ, जाने दो। फिर भी सुनो, मैंने दुनिया के सभी रंग देखे हैं। कोई भी बिना मतलब रुपए निकालकर नहीं देता। कहीं ऐसा न हो कि आगे किसी परेशानी का शिकार बन जाओ। इसीलिए मैं तुमको अभी से चेतावनी दे रहा हूँ।''

गुरुचरण बाबू कुछ उत्तर न देकर तमस्सुक हाथ में लेकर चल दिए। चलते समय नवीनराय को उन्होंने नम्रतापूर्वक नमस्कार किया।

अपने स्वास्थ्य-सुधार हेतु भुवनेश्वरी प्राय: पश्चिम के किसी शहर को चली जाया करती थीं। जलवायु बदल जाने से उनका अजीर्ण-रोग बहुत कुछ दब जाता था। उसी रोग के बहाने नवीनराय गुरुचरण बाबू से कड़ा तकाजा कर बैठे थे। अब भुवनेश्वरी की भी तैयारी पश्चिम जाने के लिए होने लगी।

अन्नाकाली शेखर के कमरे में पहुँची और बोली, ''शेखर भैया! आप लोग कल ही बाहर जा रहे हैं?'' इस समय शेखर अपना सामान सँभालकर रखने में लगा हुआ था। उसने ऊपर देखकर अन्नाकाली से कहा, ''मेरी प्यारी बहन! जाकर दीदी को तो बुला ला! उसे भी जाने के लिए जो कुछ ठीक करना हो, कर जाए! अभी तो मुझे सैकड़ों

काम करने बाकी हैं। समय भी अधिक नहीं है!'' शेखर का खयाल था कि हर साल की तरह ललिता भी जाएगी।

गरदन हिलाकर अन्नाकाली ने कहा, ''इस बार दीदी साथ में नहीं जाएँगी।''

''क्यों नहीं जाएँगी?''

''वाह! आपको यह भी पता नहीं? वह कहाँ जा सकती हैं? इसी माघ-फागुन में शादी करने के लिए पिताजी उसके वर की तलाश कर रहे हैं।''

यह सुनते ही शेखर दु:खित हो गया। उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, भौचक्का सा जमीन देखता रहा।

जो कुछ अन्नाकाली ने घर में सुना था, वह सब विवरण के साथ उसने शेखर को सुनाया। उसने कहा कि शादी में जो भी खर्च होगा, गिरींद्र बाबू देंगे। लड़का भी हर प्रकार से योग्य होना चाहिए। योग्य वर की खोज में पिताजी आज भी दफ्तर न जाएँगे। वह गिरींद्र बाबू के साथ वर देखने जा रहे हैं।

इन सभी बातों को शेखर ध्यानपूर्वक सुनता रहा। उसके हृदय में तरह-तरह की भावनाएँ उठने लगीं। उसने देखा कि इधर ललिता उसके पास बहुत ही कम आती है।

अन्नाकाली फिर बोली, ''भैया! गिरींद्र बाबू बहुत ही भले आदमी हैं। मँझली दीदी के ब्याह में हमारा मकान ताऊजी ने रेहन रखा था। इस बात को सोचकर बाबूजी कहते थे कि दो माह बाद घर हाथ से निकल जाएगा और सड़क की ठोकरों का सामना करना होगा। इसी बात पर दया-सागर गिरींद्र ने बाबूजी को कर्ज का सारा रुपया दे दिया। छोटी दीदी कल कहती थी कि अब हम लोगों को घर छोड़ने का भय नहीं रहा। सच है न, शेखर दादा?''

इन बातों को अन्नाकाली से सुनकर शेखर अवाक् हो गया और कुछ भी उत्तर न दे सका।

शेखर को चुप देखकर अन्नाकाली ने पूछा, ''क्या सोच रहे हो, दादा?''

शेखर यह सुनकर चौंक पड़ा और बोला, ''जा, दीदी को जल्दी बुला तो ला! यह बता देना कि मैंने बुलाया है, जरूरी काम है। दौड़ती हुई जा!''

तुरंत दौड़ती हुई अन्नाकाली ललिता को बुलाने गई। उसके जाने पर शेखर भावनाओं के सागर में उथल-पुथल मचाने लगा। सामने संदूक खोले वह ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या साथ ले जाए और क्या नहीं! उसे नेत्रों में चकाचौंध प्रतीत होने लगी।

शेखर के बुलावे को सुनकर ललिता तुरंत ऊपर आई, परंतु कमरे में जाने के पूर्व उसने शेखर को बड़े गहरे विचारों में निमग्न सा देखा। शेखर जमीन की ओर ताक रहा था। सामने संदूक खुला पड़ा था, चेहरे पर चिंता की रेखा झलक रही थी। शेखर की ऐसी दशा तथा उसकी ऐसी मुखाकृति ललिता ने कभी न देखी थी। वह आश्चर्य में पड़ गई। साथ-ही-साथ उसे भय भी हुआ। डरते हुए धीरे-धीरे वह शेखर के पास आई। उसको देखते हुए शेखर ने कहा, ''आओ ललिता, बैठो!'' शेखर को मानो अब स्वप्न से कुछ छुटकारा मिला।

बड़े ही मंद स्वर में ललिता ने पूछा, ''मुझे आपने बुलाया था?''

''हाँ।'' फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने कहा, ''कल सवेरे की गाड़ी से माँ के साथ मैं इलाहाबाद जा रहा हूँ। हो सकता है कि इस बार लौटने में देर हो जाए। यह चाभी लो, तुम्हारी आवश्यकता के रुपए इसी दराज में हैं।''

प्रति वर्ष ललिता बड़े उत्साह से भुवनेश्वरी के साथ जाया करती थी। उसको स्मरण हुआ कि कितने उत्साह के साथ वह सभी सामान सँभालकर इसी बक्स में रखा करती थी। आज उसे खुले हुए संदूक को देखकर दु:ख हो आया।

शेखर खाँसकर गले को साफ करते हुए और उसकी ओर देखते हुए बोला, ''ललिता, देखो, बहुत होशियारी से

रहना! फिर भी यदि तुम्हें कोई जरूरत लगे तो भैया से मेरा पता लेकर बिना संकोच मुझे लिखना।''

दोनों ही चुप रह गए। ललिता मन-ही-मन यह अनुमान करने लगी कि शेखर को शायद मालूम हो गया है कि इस बार वह उनके साथ न जाएगी। साथ ही मन-ही-मन उसने यह भी सोचा कि शायद उन्हें मेरे न जाने का कारण ज्ञात हो गया होगा! इस बात को सोचकर वह मानो शर्म से जमीन में धँस गई।

एकाएक शेखर ने कहा, ''ललिता, अब तुम जाओ! तुमको मालूम है कि मुझे बहुत से काम करने हैं। काफी समय हो आया है, ऑफिस भी जाना है।''

ललिता उसी संदूक के सामने आकर बैठ गई और कहने लगी, ''जाओ, ऑफिस जाने की तैयारी में लगो, मैं सब सामान ठीक से रख देती हूँ।''

''अच्छा इससे भली और क्या बात हो सकती है।'' ललिता को चाभी का गुच्छा देकर शेखर बाहर जाने लगा। जाते समय कुछ खयाल हो आया, अत: दरवाजे के पास खड़े होकर उसने कहा, ''मुझे क्या-क्या आवश्यकता है, यह तुम्हें मालम है न?''

ललिता संदूक के अंदर की वस्तुएँ एक-एक करके देखने लगी। शेखर की बात का कोई भी उत्तर नहीं दिया।

शेखर ने नीचे जाकर माँ से पूछकर मालूम किया कि अन्नाकाली ने जो कुछ कहा, सब सत्य है! गुरुचरण बाबू ने यह पूरा कर्ज अदा कर दिया। ललिता के लिए योग्य वर की खोज है,यह भी सत्य है! तत्पश्चात् कुछ और पूछकर वह स्नान करने के लिए चला गया।

लगभग दो घंटे के पश्चात् नहा-खाकर शेखर अपने कमरे में कपड़े पहनने के लिए आया। कमरे में आते ही उसने जो देखा, उसे देखकर वह एकाएक आश्चर्य में पड़ गया। इन दो घंटों में ललिता ने कुछ कार्य नहीं किया, वह बक्स के पास मन मारे, माथा टेके हुए खामोश बैठी थी। शेखर के आने की आहट से उसने झट सिर उठाया और फिर तुरंत गरदन नीची कर ली। रोते-रोते उसकी आँखें फूल आई थीं। शेखर की नजर उसकी आँखों पर अवश्य पड़ी,परंतु उसने न देखने का बहाना किया। वह चुपचाप अपने दफ्तर के कपड़े पहनने लगा। कपड़े पहनते हुए सहज भाव से उसने कहा, ''अभी रहने दो, ललिता। इस समय तुमसे यह सब न हो सकेगा, दोपहर को आकर रख जाना।'' यह कहकर शेखर ऑफिस चला गया। उसने ललिता के मनोभाव को पूर्ण रूप से समझ लिया था, फिर भी हर बात को बगैर सोचे-समझे कह डालना वह उचित नहीं समझता था और न तो उसकी हिम्मत ही हुई।

वह उसी दिन मामा को चाय देने के समय कमरे में आई तो वहाँ शेखर को भी उपस्थित देखकर एकदम दंग रह गई। वह यात्रा पर जाने के पहले गुरुचरण बाबू से मिलने के लिए आया था।

ललिता ने चाय तैयार करके गिरींद्र और मामा के सामने दो कपों में लाकर रख दी। गिरींद्र ने पूछा, ''क्यों ललिता, शेखर बाबू को चाय न दोगी?''

मीठे स्वर में ललिता ने कहा, ''नहीं, शेखर दादा चाय नहीं पीते!''

गिरींद्र ने फिर और कुछ नहीं कहा। ललिता ने एक दिन ऐसा कहा भी था कि शेखर दादा चाय नहीं पीते और अन्य को पीने भी नहीं देना चाहते। तत्काल गिरींद्र को वही बात याद आ गई थी।

हाथ में चाय का कप लेकर गुरुचरण बाबू ललिता के लिए ढूँढ़े गए वर की बात कहने लगे, ''लड़का अच्छा है, बी.ए. में पढ़ रहा है।'' यह सब कह चुकने के पश्चात् बोले, ''फिर भी तो वह लड़का गिरींद्र को न भाया! इतना जरूर है कि लड़का विशेष साफ और सुंदर नहीं है, फिर भी शादी के बाद कौन रूप-रंग और सुंदरता देखता है और यह रंग-रूप काम ही क्या आता है? मर्द की अच्छाई तो उसके गुणों में होती है।''

गुरुचरण बाबू की एकमात्र इच्छा यह थी कि किसी तरह ललिता का पाणिग्रहण हो और उनके सिर से यह बोझ उतरे।

आज ही शेखर का परिचय गिरींद्र से यहीं पर बैठे हुए हुआ था। गिरींद्र को देखकर शेखर को कुछ हँसी आई और उसने कहा, ''आखिर गिरींद्र बाबू को क्यों लड़का अच्छा नहीं लगा? लड़का अभी पढ़ता ही है, उम्र भी ठीक है, फिर तो कोई कमी है ही नहीं! सुपात्र के यही सब गुण हैं।''

गिरींद्र को लड़का क्यों पसंद नहीं है, इस बात को शेखर समझ चुका था। उसे भविष्य में भी कोई लड़का भला न मालूम होगा। गिरींद्र ने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया, उसका मुँह आरक्त हो उठा। शेखर ने उस आरक्त मुखाकृति को भी देख लिया। वह उठकर खड़ा हो गया और बोला, ''काकाजी, कल मैं माँ को लेकर प्रयाग जा रहा हूँ, परंतु याद रखिएगा, ठीक समय पर शुभ कार्य की खबर अवश्य दीजिएगा।'

गुरुचरण बाबू ने उत्तर दिया, ''क्या कहते हो, बेटा! तुम्हीं तो मेरे सबकुछ हो, मेरा है ही कौन! फिर ललिता की माँ की अनुपस्थिति में कोई काम भी तो नहीं हो सकता। क्यों बेटी?'' इतना कहकर गुरुचरण बाबू मुसकराए और ललिता की ओर देखा।

मगर ललिता को वहाँ न देखकर बोले, ''आखिर ललिता यहाँ से कब चली गई?''

शेखर ने कहा, ''ज्यों ही यह बात छिड़ी, वह चली क्यों न जाए!''

अत्यंत गंभीर भाव से गुरुचरण बाबू ने कहा, ''वह चली क्यों न जाए? आखिर वह भी सयानी हुई, समझ भी उसकी कम नहीं है!'' उन्होंने एक गहरी साँस ली और कहने लगे, ''मेरी पुत्री ललिता सरस्वती और लक्ष्मी का सम्मिलित स्वरूप है। ऐसी लड़की होना ही कठिन है। ऐसी औलाद बड़े पूजा-पाठ करने के बाद ही मिलती है, शेखर भैया!''

यह बात उनके मुख से निकलते ही उनके दुबले मुँह पर एक प्रकार की चमक दौड़ गई। उनकी ऐसी अवस्था देखकर गिरींद्र तथा शेखर दोनों में श्रद्धा का बहाव उमड़ आया।

❑

# सात

ललिता अपने विषय की बात होते देखकर वहाँ से चली आई और सीधे शेखर के कमरे में पहुँची। उसने शेखर के बक्स को खींचकर रोशनी में किया और सभी कपड़े तथा आवश्यक सामान उसमें रखना शुरू किया। उसी समय शेखर भी वहाँ आ गया। शेखर के आते ही ललिता की दृष्टि उस पर पड़ी और वह एकाएक चक्कर में पड़ गई, कुछ बोल न सकी।

जिस प्रकार किसी मुकदमे का हारा मुवक्किल एकदम निर्जीव सा हो जाता है, बोल नहीं पाता, उसकी सूरत बिगड़ जाती है, उसको पहचान सकना भी कठिन हो जाता है, ठीक वैसी ही हालत उस समय शेखर की थी। अभी एक घंटे में ही शेखर की मुखाकृति ऐसी बदल गई थी कि ललिता उसे पहचान नहीं पा रही थी। न जाने कैसी उदासी और परेशानी शेखर के मुख पर छाई थी। मालूम होता था कि उसका सर्वस्व लुट चुका है। उसने कुछ भारी तथा सूखे स्वर में पूछा, ''ललिता, क्या कर रही हो?''

शेखर की दशा देखकर ललिता हैरान थी। वह उसके पास आई और हाथ पकड़कर बोली, ''क्या हुआ, भैया? इतना परेशान क्यों हो?''

ललिता को दिखाने के लिए शेखर ने थोड़ा मुसकरा दिया और बात बनाते हुए बोला, ''कहाँ? हुआ तो कुछ भी नहीं!'' ललिता के स्नेह भरे हाथों के छूने से उसमें कुछ जान आ रही थी। पास ही पड़ी हुई कुरसी पर बैठते हुए शेखर ने कहा, ''क्या कर रही हो, ललिता?''

ललिता ने उत्तर दिया, ''आपका ओवरकोट रखने को रह गया था, उसे ही बक्स में रखने आई हूँ।'' बड़े ही चाव से शेखर उसकी बातें सुन रहा था। ललिता कहती गई, ''पिछले साल गाड़ी में तुम्हें सर्दी से बड़ा ही कष्ट हुआ था। कोट तो तुम्हारे पास थे, किंतु बड़ा और मोटा कोट कोई भी नहीं था। इसी कारण वहाँ से लौटने पर यह ओवरकोट तुम्हारे नाप का बनवा लिया था।'' यह कहकर ललिता ने वह मोटा और बड़ा कोट शेखर के सामने लाकर रख दिया, जो कड़ी-से-कड़ी सर्दी को भी पास न फटकने दे।

''इस कोट के बारे में आज तक तुमने कभी जिक्र नहीं किया।''

ललिता ने मुसकराकर कहा, ''शेखर भैया, तुम ठहरे बड़े आदमी! यदि पहले बताती तो क्या तुम बनवाने भी देते? यही सोचकर बिना पूछे ही यह कोट बनवाकर रख लिया था।'' ललिता ने उस कोट को यथास्थान रख दिया और शेखर से कहा, ''भैया, सर्दी के समय अवश्य पहन लेना।''

''अच्छा।'' कहकर शेखर थोड़े समय तक ललिता की ओर एकटक देखता रहा, फिर उसने एकाएक कहा, ''नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता।''

ललिता ने कहा, ''क्या नहीं हो सकता, भैया? क्या इस कोट को नहीं पहनोगे?''

शेखर ने बात बनाते हुए कहा, ''ऐसी बात नहीं, दूसरी बात है।'' कहकर उसने ललिता से पूछा, ''क्या माँ का भी सामान ठीक हो गया है?''

''हाँ, मैंने ही तो दोपहर को बाँधकर ठीक कर दिया है।'' यह कहते हुए सब सामान देखकर ललिता ने बक्स को बंद कर दिया।

थोड़ी देर पश्चात् शेखर ने ललिता से पूछा, ''अच्छा, अब मेरा अगले वर्ष से कैसे क्या होगा?''

''क्यों?''

''ललिता, इस क्यों का मुझे पूर्ण अनुभव हो रहा है।'' वास्तव में यह बात शेखर के मुँह से निकल तो गई, किंतु उस बात को बदलते हुए हँसी के साथ उसने फिर कहना शुरू किया, ''अच्छा ललिता, दूसरे घर जाने से पहले मुझे यह बताती जाना कि कौन सी चीज कहाँ पर है। क्या-क्या है और क्या नहीं है, कौन वस्तु कहाँ आवश्यक है, इस सबकी जानकारी मुझे अवश्य करा देना, ताकि किसी प्रकार की दिक्कत न उठानी पड़े और समय पर सभी चीजें मिल भी सकें।''

थोड़ा सा चिढ़कर ललिता ने कहा, ''अरे जाओ!''

शेखर को हँसी आ गई। वह बोला, ''केवल 'जाओ' कहने से तो काम न बन सकेगा। ललिता, यह सत्य है, आखिर तुम्हीं सोचो कि मेरा काम आगे कैसे चलेगा? मेरी इच्छाएँ तुम्हें मालूम हैं कि बड़ी हैं, परंतु उनकी पूर्ति की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। फिर सब काम नौकरों द्वारा नहीं कराए जा सकते। मुझे अब ऐसा लग रहा है कि तुम्हारे मामा की तरह सादा जीवन बिताना पड़ेगा। कुरता और धोती पर ही बसर होगी। खैर, कुछ भी हो, परमात्मा की जैसी इच्छा हो।''

ललिता शरमाकर चाभियाँ फेंककर चली गई।

उसको जाते देखकर शेखर ने जोर से आवाज दी, ''ललिता, सवेरे अवश्य आ जाना।''

परंतु ललिता ने सुनकर भी अनसुना कर दिया। वह तेजी से दूसरी मंजिल पर चली गई। वहाँ उसने अन्नाकाली को चाँदनी के प्रकाश में माला बनाते हुए देखा। उसके निकट आकर ललिता ने कहा, ''अन्नाकाली, ओस में बैठकर क्या बना रही है?''

अन्नाकाली सिर झुकाए हुए बोली, ''माला बना रही हूँ। आज रात को मेरी लड़की का विवाह है न!''

''मुझे तो तुमने इसके बारे में बताया भी नहीं।''

''पहले से कोई तय न था, दीदी! अभी तो पिताजी ने पत्रा देखकर बताया है कि आज के अलावा इस महीने में कोई लग्न नहीं है। कन्या बड़ी हो गई है, यदि ब्याह न हुआ तो सब लोग चिढ़ाएँगे। आज ही शुभ मुहूर्त में ब्याह हो जाएगा, दीदी। हाँ, दो रुपए दो, बारातियों के लिए मिठाई मँगवा लें।''

ललिता ने हँसी में कहा, ''वाह, केवल पैसों की आवश्यकता पड़ने पर छोटी दीदी की याद आती है। जा, मेरे तकिए के नीचे से ले आ, किंतु यह तो बता अन्ना, कहीं गेंदे के फूलों से ब्याह हुआ करता है?''

गंभीरता के साथ अन्नाकाली ने उत्तर दिया, ''दूसरे किसी फूल के न मिलने पर गेंदे के फूलों की वरमाला बना लेने में क्या हर्ज है? मैंने तो इसी तरह तमाम लड़कियों का ब्याह गेंदे के फूलों से किया है, दीदी! मुझे यह सब बातें ज्ञात हैं।'' यह कहकर वह मिठाई लेने चली गई।

ललिता वहीं पर बैठकर माला गूँथने लगी।

थोड़ी देर पश्चात् अन्नाकाली ने वापस आकर कहा, ''सभी को तो न्योता दे चुकी हूँ, केवल शेखर भैया को देना बाकी है। उन्हें भी न्योता दे आऊँ, नहीं तो बुरा न मान जाएँ।'' यह कहती हुई वह तुरंत शेखर के कमरे की ओर चली गई।

अन्नाकाली पूरी दादी है। सभी काम वह नियमपूर्वक करती है। वह उम्र में तो छोटी है, किंतु बुद्धि उसकी बड़ी तीव्र है। शेखर को बुलावा देकर वह नीचे आई और ललिता से बोली, ''शेखर भैया ने एक हार माँगा है। जाओ जल्दी से दे आओ। मैं यहाँ का सारा काम पूरा करती हूँ। अब मुहूर्त का समय आ गया है, देर करने की आवश्यकता नहीं है।''

ललिता ने गरदन हिलाकर कहा, ''अन्नाकाली, मुझसे ऐसा न हो सकेगा, तू ही जाकर देआ।''

''बहुत अच्छा, मैं जाकर दे आती हूँ। वह बड़ी माला उठाकर लाओ।''

ललिता ने माला उठाकर अन्नाकाली के देते-देते न मालूम क्या सोचा और बोली, ''अच्छा, मैं ही दे आती हूँ।''

अन्नाकाली ने बुड्ढों की भाँति गंभीर स्वर में कहा, ''ऐसा ही करो, जीजी! मुझे तो अभी सैकड़ों काम करने बाकी हैं, दम लेने तक का मौका नहीं मिलता।''

अन्नाकाली के कहने के ढंग और बुड्ढों जैसी बातें सुनकर ललिता की हँसी न रुक सकी। वह माला लेकर हँसती हुई चली गई। शेखर के घर पहुँचकर ललिता ने झरोखे से देखा कि शेखर कोई पत्र लिखने में एकाग्रचित्त व्यस्त है। धीरे से उसने दरवाजा खोला, अंदर पहुँची और चुपके से शेखर के पीछे जा खड़ी हुई। उसके वहाँ आने का आभास भी शेखर को नहीं हुआ। क्षण भर चुप रहने के पश्चात् ललिता ने शेखर को चकित कर देने के लिए धीरे से वही माला पहना दी और तुरंत कुरसी के पीछे हटकर बैठ गई।

शेखर चौंककर बोला, ''यह क्या अन्ना?'' लेकिन गरदन घुमाते ही उसकी दृष्टि ललिता पर पड़ी तो आश्चर्यचकित हो वह गंभीर भाव से बोला, ''ललिता, यह तुमने क्या कर दिया?''

शेखर के शब्दों से शंकित ललिता ने उठकर कहा, ''मैंने क्या कर दिया?''

''मुझसे क्या पूछ रही हो? तुम्हें नहीं पता तो अन्नाकाली से जाकर पूछो कि आज रात को माला पहनाने से क्या होता है?''

ललिता अब समझी कि उसने क्या कर डाला! उसके मुख पर लज्जा छा गई। वह बड़े ही संकोच से मुँह बनाते हुए बोली, ''नहीं, ऐसा नहीं। मैं ऐसा कभी नहीं चाहती, मैंने तो माला...।'' पूरी बात कहे बिना ही वह नवविवाहिता की भाँति लजाकर कमरे से बाहर चली गई।

शेखर ने उसे जाते देखकर जोर से पुकारा, ''ललिता, जरा मेरी एक बात तो सुनती जाओ। एक बड़ा ही आवश्यक कार्य है।''

शेखर की पुकार सुनकर भी ललिता ने अनसुनी कर दी। वह सीधे अपने कमरे में आई और तकिए पर मुँह डालकर पड़ रही।

बचपन से लेकर इस युवावस्था के पाँच-छह वर्षों तक का समय उसने शेखर के साथ ही काटा था, परंतु ऐसी कोई भी बात शेखर के मुँह से सुनी न थी। शेखर का स्वभाव तथा चरित्र वह भली प्रकार जानती थी। वह गंभीर प्रकृतिवाला था। एक तो शेखर उससे परिहास करता ही न था और यदि कर भी बैठता तो ललिता परवाह न करती थी। उसने कभी इस प्रकार की कल्पना भी न की थी। उस माला के आशय को सोच-सोचकर उसे बड़ी शर्म आ रही थी कि वह अपने मुँह को किस बिल में छिपा दे।

वह पड़ी-पड़ी यह भी विचारती थी कि 'उन्होंने आवश्यक कार्य कहकर बुलाया है' अभी वह जाने या न जाने की बात विचार ही रही थी कि शेखर की नौकरानी ने आकर कहा, ''ललिता दीदी, कहाँ हो? तुमको छोटे भैया बुला रहे हैं।''

कमरे से निकलकर ललिता ने धीरे से कहा, ''चलो, आ रही हूँ।'' ऊपर पहुँचकर दरवाजे से उसने देखा, अभी पत्र समाप्त नहीं हुआ। उसी को पूरा करने में ही वह लगा है। कुछ समय तक वह चुपचाप खड़ी रही, फिर पूछा, ''क्यों बुलाया है?''

शेखर ने पत्र लिखते-लिखते कहा, ''आखिर तुमने आज यह क्या कर डाला? आओ, बैठो।''

ललिता ने रूठकर कहा, ''जाने दो, फिर वही बात?''

''आखिर उसमें मेरा क्या कसूर है, ललिता? तुम्हीं ने तो यह सब किया।''

''मैंने कुछ नहीं किया, मेरी माला वापस कर दो।''

''इसीलिए तो तुम्हें बुलाया है, ललिता। मेरे पास आओ, मैं तुम्हारी माला वापस किए देता हूँ। तुमने जो अधूरा काम किया है उसको पूरा कर दूँ!''

दरवाजे के पास खड़ी हुई ललिता चुपचाप न जाने क्या सोचती रही। फिर बोली, ''मैं सत्य कहती हूँ, यदि ऐसा हँसी-मजाक मुझसे करोगे तो मैं कभी भी न आऊँगी। मेरी माला लौटा दो।''

शेखर ने गले में पड़ी माला को उतारकर कहा, ''आकर ले जाओ न!''

''उसे मेरे पास फेंक दो, मैं वहाँ न आऊँगी!''

''यदि पास न आओगी तो न दूँगा।''

''न दो।'' यह कहकर ललिता चल पड़ी।

उसे जाते देखकर शेखर चिल्लाकर बोला, ''यह अधूरा काम छोड़कर क्यों जा रही हो?''

वह जाते-जाते नाराज होकर कहती गई, ''अधूरा है तो अधूरा ही सही।''

ललिता वहाँ से चली तो आई, परंतु नीचे नहीं गई। वह छज्जे के एक कोने पर खड़ी होकर आकाश की ओर देखती हुई न जाने क्या सोचती रही। ऊपर चाँद मुसकरा रहा था और उसकी सुनहरी किरण सारी दुनिया को रंगमय बना रही थी। उन शीतल किरणों के रंग में ललिता भी विभोर थी। खड़े-खड़े उसके हृदय में न जाने क्या-क्या कल्पनाएँ उठ रही थीं। अपने ऊपर क्रोध भी आ रहा था और शर्म भी। वहीं खड़े-खड़े उसने एक बार शेखर के कमरे की तरफ देखा। पता नहीं क्यों, उसके चेहरे पर अभिमान की रेखा झलक आई और नेत्र सजल हो गए। वह अबोध बालिका न थी कि उसे इन सभी बातों का पता न था, फिर इस प्रकार की हँसी करने का क्या मतलब हो सकता था। उसकी दशा कितनी गिरी हुई है, वह एक अनाथ बालिका है, उसके मामा का ही एकमात्र सहारा है। फिर भी पराए लोग निरुपाय समझकर आदर करते हैं। शेखर का व्यवहार भी इसी प्रकार का है। वह मुझे निराश्रित समझकर ही स्नेह और आश्रय देता है तथा शेखर की माँ भी अपार स्नेह करती हैं। दुनिया में उसका है ही कौन? किसी पर ललिता का अधिकार नहीं है। इसीलिए तो गिरींद्र ने उसके उद्धार का पूरा भार उठाया है।

अपने नेत्र बंद किए हुए ललिता मन-ही-मन सोचने लगी। उसके मामा की अपेक्षा शेखर की दशा बहुत अच्छी है। उसके मामा का स्थान उसके सामने कुछ भी नहीं है। वह उसी मामा के आश्रय में है, उनके ही गले का जंजाल है। शेखर की शादी की बातचीत बराबरी में धनवान घर से चल रही है, चाहे वह अभी हो या दो-चार दिन बाद, पर तय करीब-करीब वहीं है। इस विवाह से नवीनराय को बहुत बड़ी संपदा मिलेगी, उसने ऐसा शेखर की माँ से सुना है।

शेखर भैया फिर क्यों इस प्रकार उसकी हँसी उड़ा रहे हैं और तिरस्कार कर रहे हैं? ये सभी बातें ललिता सूने आकाश की ओर देखकर सोच रही थी। क्षण भर में ही उसने घूमकर देखा कि शेखर उसके पीछे खड़ा हँस रहा है और वही माला उसने एकदम से उसके गले में पहना दी। यह देखकर वह रोने लगी और बोली, ''ऐसा तुमने क्यों किया?''

''तुमने भी ऐसा क्यों किया था, ललिता?''

''मैंने तो कुछ भी नहीं किया।'' यह कहकर वह माला तोड़ने ही जा रही थी कि उसकी दृष्टि शेखर की दृष्टि से

मिली और रुक गई। वह माला को फिर न तोड़ सकी, परंतु उसने रोते हुए कहा, ''मैं परेशान, अभागिन तथा असहाय हूँ, इसीलिए क्या मेरा उपहास कर रहे हो, शेखर भैया?''

शेखर अभी तक खड़ा-खड़ा हँस रहा था। ललिता की यह बात सुनकर वह सन्न रह गया। उसने कहा, ''मैंने तुम्हारा उपहास किया है या तुमने मेरा किया है!''

ललिता ने अपने भीगे नेत्रों को पोंछकर कहा, ''मैंने तुम्हारा उपहास कब किया?''

शेखर थोड़ी देर रुककर सजग हो गया और बोला, ''थोड़ा सा सोचने पर समझ जाओगी। आजकल अपनी मनमानी कर रही हो, इसीलिए यात्रा पर जाने के लिए मैंने मना कर दिया है।'' शेखर यह कहकर चुप हो गया।

ललिता गूँगे की भाँति खड़ी सुनती रही। चंद्र किरणों की रुपहली आभा में दोनों खड़े थे, लेकिन नीचे कमरे में अन्नाकाली अपनी गुडिया की शादी कर रही थी। शंखध्वनि गूँज रही थी और खामोशी भंग हो रही थी।

थोड़ी देर के बाद शेखर ने कहा, ''अधिक ठंड पड़ने लगी है, जाओ, नीचे चली जाओ।''

''जाती हूँ।'' कहकर उसने शेखर के पैर छुए और प्रणाम करके बोली, ''मुझे यह तो बताते जाओ कि मैं अब क्या करूँगी?''

शेखर यह सुनकर हँस पड़ा। एक बार तो उसे भय सा प्रतीत हुआ, पर उसने हाथ बढ़ाकर ललिता को पकड़कर हृदय से लगा लिया और उसके होंठों को अपने होंठों से स्पर्श करते हुए कहा, ''अब मुझे कुछ भी न बताना पड़ेगा, तुम स्वयं समझ जाओगी, ललिता!''

शेखर के इस प्रकार के स्नेह को देखकर ललिता को रोमांच हो आया। उसने दूर जाकर कहा, ''तो क्या तुमने केवल गले में माला पहना देने के कारण ही ऐसा किया?''

मुसकराते हुए शेखर ने कहा, ''नहीं ललिता, ऐसी बात नहीं! मैं तो स्वयं काफी दिनों से ऐसा करने का विचार कर रहा था, परंतु किसी तरह का निश्चय न कर पाता था। आज अब यह अंतिम निश्चय हो ही गया। मुझे आज अनुभव हो रहा है कि तुम्हें त्यागकर मैं कहीं रह नहीं सकता।''

''परंतु तुम्हारे पिताजी यह सुनकर अवश्य क्रोध करेंगे और माताजी को भी महान् कष्ट होगा। जो कुछ भी तुमने सोचा है, वह न हो पाएगा!''

शेखर ने कहा, ''हाँ, पिताजी यह सुनकर अवश्य आगबबूला हो जाएँगे, परंतु माताजी अवश्य ही हृदय से प्रसन्न होंगी। खैर, अब तो कुछ होना ही नहीं, जो होना था, हो गया। अब इसको खत्म कर ही कौन सकता है! जाओ, अब नीचे जाओ, माताजी को प्रणाम करो।''

ललिता वहाँ से नीचे चली गई, पर जाते समय भी वह घूम-घूमकर अपने प्रियतम को देखती रही।

❑

# आठ

लगभग तीन माह बाद गुरुचरण बाबू मलिन मुख नवीन बाबू के यहाँ आकर फर्श पर बैठने ही वाले थे कि नवीन बाबू ने बड़े जोर से डाँटकर कहा, ''न-न, यहाँ पर नहीं, उधर उस चौकी पर जाकर बैठो! मैं इस कुसमय में नहीं नहा-धो सकता। तुमने जाति बदली है, यह सत्य है न?''

क्षुब्ध होकर गुरुचरण बाबू एक दूर की चौकी पर जाकर बैठे। कुछ देर वे मस्तक झुकाए बैठे रहे। अभी चार दिन पहले की बात है, उन्होंने विधिवत् ब्रह्मसमाज को ग्रहण कर लिया है। अब वह ब्रह्मसमाजी हो गए हैं, यह खबर आज ही नवीनराय को मिली है। अब उन्हें बंगाली समाज में बैठने का कोई अधिकार नहीं है। सामने गुरुचरण बाबू को बैठे हुए देखकर नवीनराय की आँखों से गरम लपटें निकलने लगीं, परंतु गुरुचरण बाबू एक अपराधी की तरह मौन बैठे रहे। किसी से सलाह-सूत के बिना ही वे ब्रह्मसमाजी हो गए थे, परंतु उसी समय से घरेलू परेशानियाँ बढ़ गईं तथा रोना-चिल्लना मचा रहता था। घर का कोना-कोना अशांत था। इस अशांति के कारण वह बड़े ही दु:खी थे।

नवीनराय ने फिर उद्दंड भाव से पूछा, ''कहो, यह सत्य है न कि तुम ब्रह्मसमाजी हो गए हो?''

गुरुचरण बाबू के नेत्र सजल थे। दु:ख भरे शब्दों में उन्होंने कहा, ''हाँ, यह सत्य है।''

''यह घृणित कार्य तुमने किया क्यों? तुम तो केवल साठ रुपए तनख्वाह पाते हो, फिर क्यों?'' गुस्से के मारे नवीनराय की जबान से बोल न निकला।

रोते हुए बड़े नम्र स्वर में गुरुचरण बाबू ने जवाब दिया, ''दादा, क्या कहें, बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। दु:ख में कुछ न दिखाई दिया। मैं यह न सोच सका कि गले में फाँसी लगा लूँ या फिर ब्रह्मसमाज में मिल जाऊँ। अंत में ब्रह्मसमाजी हो जाना ही ठीक समझ में आया। इसीलिए मैंने यह ब्रह्मसमाज स्वीकार कर लिया।''

नवीनराय ने बड़े जोर से चिल्लाकर कहा, ''बहुत अच्छा किया! अपने गले में फाँसी न लगाकर सारे धर्म और समाज को फाँसी लगा दी। वाह रे वाह! अच्छा, अब तुम यहाँ से चले जाओ और यह काला मुँह कभी भी यहाँ न दिखाना। जो तुम्हारे सलाहकार हैं, उन्हीं के पास जाकर उठो-बैठो।'' यह सब सुनकर गुरुचरण बाबू वहाँ से चले गए, परंतु नवीनराय मारे क्रोध के कुछ भी नहीं सोच सके कि क्या करें और क्या न करें! गुरुचरण बाबू के भी अब वहाँ आने की कोई संभावना न थी।

गुरुचरण बाबू पर नाराज होने, झुँझलाने तथा बकने के सिवा नवीनराय कर ही क्या सकते थे? झट उन्होंने राज को बुलाया और घर में आने-जानेवाले ऊपर के रास्ते को बंद कर दिया। उस रास्ते को बंद करके उन्होंने अपने क्रोध की शांति की।

बहुत दूर परदेश में बैठी हुई भुवनेश्वरी को यह हाल मालूम हुआ तो वह फूट-फूटकर रोने लगीं, ''शेखर, भला ऐसा करने को किसने उन्हें समझाया?''

अनुमान से शेखर ने समझ लिया था कि यह राय किसने दी है, परंतु वह बात न कहकर उसने कहा, ''माँ, हो सकता था कि तुम लोग स्वयं ही उन्हें थोड़े दिन बाद अलग कर देते। समाज में उनकी छाया ही न पड़ने देते! कई कन्याओं की शादी कैसे कर सकते वह समय पर? आखिर इसका तो कोई रास्ता मेरी समझ में नहीं आता?''

गरदन हिलाते हुए भुवनेश्वरी ने कहा, ''बेटा, कुछ भी काम रुका न रह जाता! ऐसी हालत में गुरुचरण बाबू का पहले ही से धर्म छोड़ बैठना नादानी है या अक्लमंदी? यदि घबराकर लोग अपने धर्म को छोड़ने पर तुल जाएँ तो

हजारों लोग अपना समाज, धर्म छोड़ बैठें। भगवान ने पैदा किया है तो वही पालते हैं और सब कार्य पूरा करते हैं। वही भगवान गुरुचरण बाबू की भी रक्षा करते, काम बनाते!'

शेखर चुप हो रहा। गीली आँखें पोंछकर भुवनेश्वरी ने कहा, ''यदि ललिता बिटिया को ही साथ ले आती तो किसी-न-किसी प्रकार से उसका ही उपकार कर देती! हो सकता है कि इसी इरादे से गुरुचरण बाबू ने उसे मेरे साथ नहीं भेजा! मुझे तो यही पता था कि उसकी शादी की सचमुच तैयारी है।''

शेखर ने लज्जापूर्वक भुवनेश्वरी को देखकर कहा, ''अच्छा है माँ, घर वापस चलकर इस कार्य को ऐसा ही करो न! ललिता तो अभी ब्रह्मसमाजी नहीं हुई है, केवल उसके मामा ही तो हुए हैं। उसके सगे मामा भी नहीं हैं। ललिता का कोई सगा नहीं है, इसी कारण वह उनकी शरण में पड़ी है।''

खूब सोच-समझकर भुवनेश्वरी बोलीं, ''यह तो ठीक है, पर तुम्हारे पिताजी अजीब ही ढंग के व्यक्ति हैं, वे बड़े ही हठी आदमी हैं। किसी तरह से भी ऐसा करने को वह तैयार न होंगे। शायद उन लोगों से मिलने भी न देंगे।''

यही विचार शेखर के मन में भी बार-बार उठ रहे थे। वह माँ की बातों का कोई उत्तर न देकर चुपचाप बैठा सुनता रहा और मन-ही-मन सोचता रहा।

शेखर अब परदेश में एक मिनट भी नहीं रहना चाहता था। बड़ी बेचैनी और परेशानी में वह दो-तीन दिन इधर-उधर घूमता रहा। फिर उसने माँ से कहा, ''यहाँ पर जी नहीं लगता माँ, चलो, घर चलें।''

उसी दिन वह घर लौटने को तैयार हो गईं और कहने लगीं, ''मुझे भी अच्छा नहीं लगता।''

कलकत्ता वापस आने पर दोनों ने देखा कि छत से आने-जानेवाला रास्ता बंद कर दिया गया है। गुरुचरण बाबू से कोई भी नाता-रिश्ता करना नवीनराय को भला न लगेगा, यहाँ तक कि बोलना भी बुरा लगेगा, यह बात वे दोनों तुरंत ताड़ गए।

रात के समय जब शेखर खाने पर बैठा, तब माँ भी आकर उसके पास बैठ गईं। कुछ देर बाद वह बोलीं, ''गिरींद्र के साथ ही ललिता की शादी तय हो रही है, यह मैं पहले ही समझ गई थी।''

सिर नीचा किए हुए ही शेखर ने पूछा, ''किसने कहा?''

''उसकी मामी ही कह रही थी और कौन कहता! दोपहर के समय जब वह सो गए थे तो मैं स्वयं मिलने गई थी। मारे दु:ख के उसकी मामी ने अपनी आँखें लाल कर लीं। थोड़ी देर बाद अपने आँसू पोंछकर वह सबकुछ कह गईं।'' उन्होंने ही कहा, ''यही तकदीर का खेल है, शेखर! किसको दोषी ठहराया जाए। कुछ भी सही, पर गिरींद्र भी एक भला लड़का है, नम्र स्वभाव वाला है। उसके यहाँ ललिता को किसी प्रकार का कष्ट न होगा। वह धनवान भी है।'' यह कहकर वे चुप हो गईं।

उत्तर में न तो शेखर कुछ कह ही सका और न सामने रखी हुई थाली से उठाकर खा ही सका। थोड़ी देर बाद माँ वहाँ से उठकर चली गईं और शेखर भी बिना खाए-पिए उठ गया। हाथ-मुँह धोकर वह अपने बिछौने पर जा पड़ा।

दूसरे दिन संध्या समय शेखर टहलने के लिए बाहर निकला। उस वक्त गुरुचरण बाबू के यहाँ पहले की तरह चाय उड़ रही थी, हँसी-मजाक हो रहा था। वहाँ की बातें सुनकर शेखर कुछ देर रुक गया, फिर न जाने क्या सोचकर वह धीरे-धीरे गुरुचरण बाबू के कमरे में आकर खड़ा हो गया। उसके आते ही वहाँ सन्नाटा छा गया। शेखर के मुख के भाव देखकर सभी लोगों के भाव बदल गए।

शेखर के परदेश से आने की खबर ललिता के सिवा और किसी को न थी। आज गिरींद्र के सिवा एक साहब और वहाँ विराजमान थे। बड़े ही आश्चर्य में पड़कर वह शेखर की ओर देखने लगे। गिरींद्र का चेहरा गंभीरता में

और भी परिणत हो गया, वह दीवार की तरफ देखने लगा। गुरुचरण बाबू ही उस समय ज्यादा जोर से बातें कर रहे थे। शेखर को देखकर उनका चेहरा पीला हो गया। उनके निकट बैठी ललिता चाय तैयार कर रही थी। उसने एक बार मुँह उठाकर देखा और नीचा कर लिया।

आगे बढ़कर शेखर ने चौकी पर सिर झुकाकर नमस्कार किया और वहीं पर एक ओर बैठकर हँसते-हँसते कहने लगा, ''एकाएक सभी लोग चुप क्यों हो गए?''

गुरुचरण बाबू ने धीमे स्वर में आशीर्वाद दिया, आशीर्वाद में उन्होंने क्या कहा, सुनाई नहीं पड़ा।

शेखर गुरुचरण बाबू के विचारों को ताड़ गया। इसी कारण उसने बीच में ही अपनी बात छेड़ दी। वह सारी कथा —परदेश से वापस आने की, माँ के स्वास्थ्य लाभ की तथा अन्य तमाम बातें कहने लगा। फिर उसने अपरिचित व्यक्ति की ओर देखा।

गुरुचरण बाबू इस बीच में काफी सतर्क हो चुके थे। उन्होंने उस लड़के के परिचय में कहा, ''यह गिरींद्र बाबू के मित्र हैं। इन लोगों का घर एक ही स्थान पर है। बड़े ही भले आदमी हैं और श्याम बाजार में रहते हैं। हमारी इनसे जब से मुलाकात हुई है, बेचारे आकर मिल जाते हैं।''

शेखर ने गुरुचरण बाबू की बातों में अपनी सम्मति दी, परंतु मन में विचार किया, ''हाँ, देखने ही में नम्र आदमी लगते हैं।'' थोड़ी देर रुककर फिर वह गुरुचरण बाबू से बोला, ''काका और तो सब ठीक-ठाक है न?''

गुरुचरण बाबू ने कुछ भी नहीं कहा और सिर झुकाए चुप सुनते रहे।

''अच्छा, काकाजी अब चलता हूँ।'' यह कहकर शेखर जाने को तैयार हो गया। उसे जाता हुआ देखकर रुआँसे होकर गुरुचरण बाबू ने कहा, ''बेटा! तुमने सब बातें सुन ही ली होंगे, फिर भी कभी-कभी आते रहना। एकाएक हम दु:खियों का त्याग ही न कर देना।''

''अच्छा काकाजी!'' कहता हुआ वह भीतर ललिता की मामी से मिलने चला गया। थोड़ी देर बाद ललिता को मामी के रोने की आवाज बैठक में सुनाई दी। उनकी रोने की आवाज सुनकर गुरुचरण बाबू के आँसू आ गए और उन्होंने अपनी धोती से उन्हें पोंछ लिया। गिरींद्र की मुखाकृति एक अपराधी की सी हो रही थी। वह नीरस सा बाहर की ओर देखने लगा। शेखर के जाने के पहले ही ललिता वहाँ से चली गई थी।

कुछ समय के बाद शेखर उसकी मामी से बातें करके बाहर की ओर आया। सीढ़ियों से उतरते समय अँधेरे कमरे में दरवाजे के निकट उसने ललिता को खड़े हुए देखा। उसको देखते ही वह भी खड़ा हो गया। ललिता ने शेखर को प्रणाम किया और उसके पास आ गई। कुछ समय तक शेखर से कुछ उत्तर पाने की लालसा से खड़ी रही, फिर थोड़ा पीछे हटकर मंद स्वर में उसने कहा, ''आपने मेरे पत्र का उत्तर क्यों नहीं दिया?''

''कौन सा पत्र?''

''उसमें बहुत सी बातें थीं। अच्छा, उन बातों को छोड़ो! यहाँ की सभी बातें आपने सुन ही ली हैं। मेरे लिए क्या हुक्म देते हो?''

शेखर ने आश्चर्य में पड़कर कहा, ''मेरा हुक्म? मेरा हुक्म किसलिए? मेरे हुक्म से लाभ ही क्या?''

ललिता ने शंकित होकर कहा, ''क्यों?''

''और नहीं तो क्या? मैं किसे हुक्म दूँ?''

''मुझको हुक्म दो और किसको दोगे?''

''तुम्हें क्यों हुक्म दूँगा? फिर हुक्म देने पर तुम उसको मानोगी ही क्यों?'' शेखर के इस कथन में करुणा मिश्रित

थी।

ललिता यह सुनकर मन-ही-मन घबरा उठी।

उसने शेखर की छाती के समीप सिसकते हुए कहा, ''जाने दो इन बातों को! इस समय यह मजाक अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, मुझे अब तंग मत करो। बताओ, कैसे क्या होगा? मुझे डर के मारे रात को नींद नहीं आती है।''

''आखिर भय किसलिए?''

''क्या कह रहे हो? भय न लगेगा तो फिर क्या लगेगा? न तो तुम्हीं यहाँ थे और न माताजी ही थीं। फिर मामा ने क्या कर डाला है, वह भी तुमसे छिपा नहीं। अब यदि माँ मुझे न स्वीकार करें तो?''

थोड़े समय बाद शेखर ने कहा, ''वह तो ठीक है ही, अब माँ कैसे स्वीकार कर सकती हैं? उन्हें यह भी पता चला है कि तुम्हारे मामा ने अन्य लोगों से काफी पैसे लिए हैं, साथ ही अब वह ब्रह्मसमाजी भी हो गए हैं। हम लोग हिंदू हैं।''

अन्नाकाली ने उसी वक्त आकर ललिता से कहा, ''मामी बुला रही हैं।''

ललिता ने जोर से कहा, ''अच्छा, तू जा, मैं अभी आती हूँ।'' फिर नम्रतापूर्वक शेखर से कहने लगी, ''यह कुछ भी क्यों न हो, फिर भी जो धर्म तुम्हारा है, वही मेरा भी। यदि वह तुमको नहीं अलग कर सकतीं तो मुझे भी नहीं अलग कर सकतीं। इसके सिवा गिरींद्र बाबू से लिए हुए रुपए मैं उन्हें लौटा दूँगी। यह तो मेरे ऊपर कर्जा है, दो दिन आगे-पीछे लौटाना ही होगा।''

''इतना अधिक रुपया देने के लिए कहाँ से मिलेगा?''

ललिता इस बात के उत्तर में काफी समय तक चुप रही, फिर हँसकर बोली, ''क्या आपको ज्ञात नहीं है कि स्त्रियों को रुपए कौन देता है? मैं भी उन्हीं से ले आऊँगी।''

शेखर के हृदय में उथल-पुथल मची हुई थी। वह फिर कहने लगा, ''परंतु तुम्हारे मामा ने उन रुपयों के लिए तुम्हें तो बेच ही डाला है।''

ललिता अँधेरे में शेखर के चेहरे को तो न देख सकी, परंतु गले के स्वर को तुरंत ताड़ गई और बोली, ''यह सब झूठी, व्यर्थ की बातें हैं। मेरे मामा के सदृश भला मनुष्य दुनिया में होना कठिन है। तुम व्यर्थ ही उनकी हँसी उड़ाते हो। उनके कष्टों तथा दु:खों की कोई बात भी दूसरों से छिपी नहीं है, तुम भले ही न जानते हो।'' आवेश में ललिता ने इतनी बातें कह डालीं और फिर तनिक देर रुककर कहने लगी, ''फिर वह रुपया मामा ने लिया है मेरे ब्याह के बाद, इस कारण मुझे बेचने का कोई अधिकार ही उन्हें कहाँ था? यदि मुझे बेचने का कोई अधिकारी है तो केवल तुम हो और कोई नहीं।'' इतना कहते हुए उत्तर की कोई प्रतीक्षा न करके ललिता अंदर चली गई।

कुछ देर तक अवाक् सा शेखर वहीं खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे गुरुचरण बाबू के घर से बाहर चला आया।

❑

# नौ

उस रात को काफी समय तक शेखर पागलों की भाँति, बिना किसी उद्देश्य के इधर-उधर गलियों में फिरता रहा, फिर घर में आकर बैठा हुआ सोच-विचार में पड़ा रहा। उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि यह सीधी-सादी ललिता इतनी बातें कहाँ से सीख आई? ये निर्लज्जता की बातें उसे कहाँ से कहनी आ गईं? इतना साहस गजब का साहस! आखिर यह सब कहाँ से? ललिता के आज के व्यवहार पर उसे क्रोध तथा आश्चर्य दोनों हो रहे थे, परंतु वास्तव में यह शेखर की भूल थी। यदि वह तनिक भी बुद्धिमानी से सोचता तो शायद उसे अपनी ही कमजोरी और कमी पर अपने ही ऊपर क्रोध आता! ललिता का कहना अक्षरश: सत्य था वह बेचारी और कह ही क्या सकती थी?

इधर कई महीने ललिता से अलग रहकर शेखर ने भाँति-भाँति की कल्पनाएँ की थीं। इन्हीं कल्पनाओं के अंतर्गत वह कभी तो जीवन भर का सुख अनुभव करता और कभी दु:ख, कभी लाभ-हानि के विचारों में पड़ा रहता। उसे अनुभव होता कि ललिता कितनी अधिक उसकी जीवन-सहचरी बन चुकी है। शेखर यह भी अनुभव करता कि उसके बिना जी सकना भी कितना कठिन एवं दु:खप्रद है। बचपन से ही ललिता उसके परिवार में घुली-मिली थी। शेखर उसे सदा महत्त्वपूर्ण स्थान देता आया है। अपना काम भी उसने ललिता पर ही छोड़ दिया, परंतु शेखर के मन में इस प्रकार की आशंकाएँ अवश्य उठती थीं कि कहीं ललिता उसकी जीवन संगिनी न बन सके या उसके माँ-बाप इस कार्य में बाधक न हो जाएँ। कहीं ललिता किसी अन्य के हाथ न लग जाए! शेखर इसी प्रकार की दुश्चिंताओं में पहले ही से परेशान था। इन्हीं विचारों के कारण शेखर ने परदेश जाने से पहले ही ललिता के गले में गेंदेवाली माला डालकर एक बंधन लगा दिया था।

परदेश में गुरुचरण बाबू के धर्म-परिवर्तन की खबर पाकर शेखर बेचैन हो गया। उसके हृदय में और भी गहरी चिंता हुई कि ललिता शायद अब उसकी न रह पाए। आराम हो या तकलीफ, वह उन लोगों की सभी परिस्थितियों की जानकारी रखता था। फिर भी ललिता की आजवाली स्पष्टवादिता से उसकी सभी भावनाएँ परिवर्तित हो गई थीं, उनमें घुमाव हो गया था, परंतु शेखर न समझ गया कि इन भावनाओं से भी कर्तव्य कहीं श्रेयस्कर है। पहले उसे दु:ख था कि कहीं ललिता उससे दूर न चली जाए, परंतु अब यह परेशानी थी कि कहीं उसे ही ललिता का हाथ न छोड़ना पड़ जाए!

श्याम बाजार में लगा हुआ उसका विवाह भी रुक चुका था। जितनी संपत्ति नवीनराय चाहते थे, वे लोग न दे सके। शेखर की माँ को भी यह रिश्ता जँचा नहीं। इस प्रकार शेखर इस मुसीबत से छूटा, मगर नवीनराय दस-बीस हजार मारने की फिक्र में अब भी थे। इसके लिए उनकी कोशिश बराबर चालू थी।

शेखर विचारता था कि आखिर क्या किया जाए। उस रात को अनायास ही जो कार्य हो गया, क्या वह इतना दृढ रूप धारण कर लेगा? क्या ललिता पूर्ण रूप से यह विश्वास कर लेगी कि उसका पाणिग्रहण हो चुका है और अक्षय संबंध स्थापित हो चुका है? इतनी गहराई तक शेखर ने कभी विचार नहीं किया था। उस समय तो शेखर ने आलिंगन करते हुए कहा था कि ललिता, अब जो होना था, हो चुका, इस संबंध को अब कोई नहीं तोड़ सकता! न तुम अलग हो सकती हो और न मैं छूट सकता हूँ। इस प्रकार तर्क-कुतर्क करके सोचने की क्षमता शेखर में उस समय न थी और न उस समय यह सोच सकने का अवसर ही था।

उस समय सिर पर चाँद मुसकरा रहा था। चाँदनी की रुपहली आभा छिटक रही थी। ऐसे समय उसने अपनी प्रियतमा ललिता के गले में माला डाल दी थी, उसे अपने वक्षस्थल से लगा प्रेम-सुधा-रस का पान किया था। प्रेम

संसार में वे दोनों एक-दूसरे को अपना सर्वस्व सौंप चुके थे। उस समय उन्हें सांसारिक अच्छाइयों और बुराइयों का अनुभव न था। पैसों के लोभी बाप का रुद्र रूप भी उसकी आँखों से ओझल था। उसे याद था कि माँ ललिता को प्यार करती हैं, इसलिए उन्हें इस कार्य के लिए राजी कर सकना कठिन न होगा। इसी तरह वह भैया के द्वारा पिताजी को भी कह-सुनकर मना लेगा। किसी-न-किसी तरह इस काम के लिए सब तैयार ही हो जाएँगे। इस बात को शेखर सपने में भी न सोचता था कि गुरुचरण बाबू अपना यह सुगम रास्ता धर्म-परिवर्तन करके बंद कर डालेंगे। विधाता ही इस प्रकार विमुख हो जाएँगे, ऐसा भी खयाल उसे न था। ललिता से संबंध उसका सचमुच हो चुका था।

यथार्थ में शेखर के सामने यह एक विशाल एवं कठिन समस्या थी। उसको पता था कि ऐसे समय पिताजी को राजी करने की कौन कहे, माँ भी अब शायद इस कार्य के लिए न राजी होंगी। उसे अब कोई मार्ग न सूझ पड़ता था।

'ओह! क्या किया जाए?' कहकर शेखर ने गहरी साँस ली। ललिता को वह भली-भाँति जानता था। उसी ने उसे पढ़ाया-लिखाया और सभी शिष्टाचार की बातें सिखाई थीं। ललिता ने एक बार अपना धर्म समझकर फिर उसका त्याग न किया। वह जानती है कि वह शेखर की एकमात्र धर्मपत्नी है। इसलिए आज संध्या समय अँधेरे में नि:संकोच वह शेखर के निकट मुँह-से-मुँह मिलाए खड़ी थी।

ललिता की शादी की बातचीत गिरींद्र के साथ हुई थी, परंतु इस रिश्ते के लिए उसको कोई भी राजी न कर पाएगा। समय ऐसा आ गया है कि उसे मुँह खोलकर स्पष्ट कहना ही पड़ेगा। इस प्रकार सारा रहस्य खुल जाएगा, यह सोचकर शेखर की आँखों में आग प्रज्वलित हो गई, उसका चेहरा तमतमा उठा। फिर वह सोचने लगा कि माला पहनकर ही वह चुप नहीं रहा, बल्कि ललिता को अपने वक्षस्थल से लगाकर उसने उसके अधरों का सुधा-रस भी पान किया। ललिता ने किसी प्रकार की रुकावट नहीं डाली। इस कार्य में वह अपने को दोषी न समझती थी, इसीलिए उसे कोई हिचकिचाहट भी न थी। उसने शेखर को अपना धर्म-पति समझ लिया था। शेखर अपनी इस करनी तथा व्यवहार को कैसे किसी से बताएगा? किसी के सामने वह मुँह भी न दिखा सकेगा!

वास्तव में बात यह थी कि माँ-बाप की राय बगैर ललिता का विवाह भी नहीं हो सकता था, इसमें जरा भी शक नहीं था, परंतु जब गिरींद्र के साथ ललिता की शादी न होने का कारण सामने आएगा, तब क्या होगा? फिर वह घर तथा बाहर अपना मुँह कैसे दिखा सकेगा?

❑

# दस

शेखर ने असंभव समझकर ललिता को पाने की आशा छोड़ दी। कई दिन उसे डर अनुभव होता रहा। वह एकाएक सोचने लगता कि कहीं ललिता आकर सब बातें कहकर भंडाफोड़ न कर दे, उसकी बातों का जवाब न देना पड़ जाए, परंतु कई दिन बीत गए, उससे किसी ने कुछ नहीं कहा। यह भी पता नहीं चला कि किसी को ये बातें मालूम हुईं अथवा नहीं। किसी प्रकार की चर्चा ललिता के घर में नहीं हुई और न कोई शेखर के यहाँ ही इस विषय के लिए आया।

शेखर के कमरे के सामनेवाली छत से ललिता के घर की छत साफ दिखाई देती थी, फिर भी शेखर छत पर न खड़ा होता था, जिससे उसकी निगाह ललिता पर न पड़े, परंतु एक माह बिना किसी कहा-सुनी के बीत गया तो उसने थोड़ा आराम अनुभव किया और मन में विचार करने लगा—स्त्री जाति लज्जा और संकोच की मूर्ति है, इस प्रकार की बातों को वह कभी दूसरों पर नहीं प्रकट करती। नारी की छाती फटकर टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो जाए, पर उसकी जुबान नहीं हिलती। शेखर के हृदय में इन बातों ने स्थान पा लिया। इस प्रकार औरतों के हृदय की कमजोरी, लज्जा तथा शील के लिए उसने विधाता को बारंबार धन्यवाद दिया। इतना सोचने के पश्चात् भी तो उसे चैन न था। उसकी स्थिति सदैव डाँवाँडोल क्यों रहती है? इस डर के निकल जाने पर भी उसके हृदय में बराबर आंतरिक वेदना क्यों उठती है? ललिता क्या कुछ न कहेगी? वह किसी दूसरे के संग ब्याहे जाने पर तो पूर्ण रूप से खामोश हो जाएगी। ललिता का ब्याह हो गया है और प्रीतम के साथ अपना घर-बार सँभालने चली गई है और सोचते ही शेखर के बदन में आग क्यों लग जाती है, उसका क्रोध क्यों सीमा को पार कर जाता है?

शेखर अपनी खुली छत पर नियमपूर्वक नित्य टहला करता था, आज भी उसने टहलना शुरू किया, परंतु उस घर का कोई भी प्राणी दिखाई न पड़ा। केवल अन्नाकाली किसी काम से वहाँ आई थी, परंतु उसने शेखर को देखते ही अपनी निगाहें नीची कर लीं। शेखर दुविधा में था कि उसे पुकारे या न पुकारे, इसी बीच वह आँख के सामने से अदृश्य हो गई। शेखर ने तुरंत समझ लिया कि इस दीवार के बन जाने से दोनों घरों के अलगाव का अनुभव इस अन्नाकाली को भी हो गया है।

इसी उधेड़-बुन में एक माह और बीत गया।

एक दिन भुवनेश्वरी ने बातों-ही-बातों में पूछा, ''शेखर बेटा! क्या इस बीच में ललिता को कभी देखा है?''

शेखर ने उत्तर दिया, ''नहीं तो, क्या हुआ, माँ?''

भुवनेश्वरी ने कहा, ''करीब दो माह बाद उसको मैंने छत पर देखा था और पुकारा भी था, परंतु उसके रंग-ढंग से ऐसा लगा कि उसमें बहुत ही परिवर्तन हो गया है। अब वह ललिता नहीं रही, बीमार सी लगती है। चेहरा उदास तथा सूखा हुआ है, देखने में उसकी उम्र भी बहुत प्रतीत होती है। उसको देखकर कोई नहीं कह सकता कि वह चौदह की है।'' इतना कहते हुए उनकी आँखों में आँसू भर आए।

अपनी धोती से आँसू पोंछकर दु:ख भरे शब्दों में फिर उन्होंने कहना आरंभ किया, ''वह मैली तथा फटी साड़ी पहने थी, किनारी में पैबंद लगा हुआ था। मैंने उससे पूछा—बेटी! क्या और कोई साड़ी नहीं है? उसने उत्तर दिया, है! परंतु मुझे उसके इस उत्तर पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। अपने मामा की दी हुई साड़ी उसने कभी नहीं पहनी। उसे साड़ी मैं ही देती थी। इधर छह-सात मास से मैंने उसे एक भी साड़ी नहीं दी है।''

इतना कहकर वे बिलकुल चुप हो गईं। उनके मुँह से मानो शब्द ही न निकल सके। अपनी भीगी हुई आँखों को

उन्होंने धोती से पोंछ डाला। उनके दु:ख का एकमात्र कारण यह था कि वह ललिता को अपनी सगी पुत्री के सदृश समझती थीं।

शेखर अवाक् सा दूसरी तरफ देखता रहा।

थोड़ी देर के बाद भुवनेश्वरी ने फिर कहना प्रारंभ किय, ''आज तक मेरे अलावा उसने किसी से कुछ माँगा नहीं। खाने का समय होने पर यदि वह भूखी होती थी तो भी किसी से कभी मुँह खोलकर न माँगती थी, बल्कि सीधे मेरे पास ही रुकती थी और मैं उसका मुँह देखकर समझ जाती थी कि वह भूखी है। शेखर बेटा, मैं यही बात बार-बार सोचती हूँ कि न वह अपने दु:ख को किसी से कहती है और न उसके दु:ख को कोई अनुभव करनेवाला है। वह मुझे नाम-मात्र को माँ नहीं कहा करती थी, बल्कि वह मुझको वास्तविक माँ की भाँति प्रेम करती थी!''

साहस करने पर भी शेखर अपनी माँ की ओर मुँह उठाकर न देख सका। नीचे मुँह किए हुए बैठे-ही-बैठे उसने माँ की ओर देखकर कहा, ''अच्छा माँ, तो उसे जिन-जिन वस्तुओं की अवश्यकता है, बुलाकर दे दो न!''

भुवनेश्वरी ने कहा, ''अब वह क्यों लेने लगी! तुम्हारे पिता ने तो घर में आने-जाने का मार्ग भी बंद कर दिया है। साथ ही मैं ही कौन सा मुँह लेकर उसके यहाँ जाऊँ? यदि गुरुचरण बाबू ने दु:ख के कारण पागलपन में कुछ बुरा काम कर ही डाला था तो हमें चाहिए था कि हम शुद्धि कराकर उन्हें अपने में मिला लेते। मिलाने की बात तो दूर हो गई, बल्कि हमने उन्हें बिलकुल पराया बना दिया है। दु:ख में पड़कर गुरुचरण बाबू ने अपनी जाति भी बदल दी है। इस कार्य के कारण तेरे पिता ही हैं। जब देखो, तब तकाजा सवार! मेरी समझ में तो गुरुचरण बाबू ने बड़ा ही अच्छा किया। हृदय में घृणा भर जाने पर मनुष्य मनचाहा काम करने का अधिकारी होता है। गिरींद्र उनके लिए हम लोगों से कहीं बढ़कर है। अगले महीने शायद उसी के साथ ललिता की शादी होने वाली है। मुझे विश्वास है कि ललिता बड़ी खुशी और आनंद से उसके साथ जीवन बिताएगी।''

शेखर ने आश्चर्य में पड़कर अपनी माँ से पूछा, ''क्या ललिता का ब्याह अगले माह ही है?''

''सुना तो ऐसा ही है।''

शेखर ने और कुछ नहीं पूछा।

माँ कुछ देर चुप रहीं, फिर कहने लगीं, ''ललिता ने बताया था कि उसके मामा का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता और ठीक रहे भी कैसे? वैसे उसे हार्दिक शांति नहीं है, फिर घर की हाय-हाय और भी बुरी। उसके मकान में तो सदैव अशांति का डेरा है।''

कुछ समय पश्चात् माँ के चले जाने पर शेखर उठकर अपने कमरे में चला आया और बिछौने पर करवटें बदलते हुए ललिता की यादों में विचारमग्न हो गया।

शेखर का मकान एक पहली गली में था। उस गली में दो गाड़ियाँ अथवा मोटरें पास होने में बड़ी दिक्कत होती थी। करीब दस-बारह दिन बाद शेखर की गाड़ी गुरुचरण बाबू के घर के सामने खड़ी हुई। रास्ता रुके होने के कारण गाड़ी रुक गई। शेखर अपने ऑफिस से वापस आ रहा था। गाड़ी के नीचे उतरकर उसे मालूम हुआ कि गुरुचरण बाबू के यहाँ डॉक्टर आए हैं।

कई दिन पहले ही उसने गुरुचरण बाबू की अस्वस्थता के बारे में अपनी माँ से सुना था। इसीलिए अपने घर न जाकर उन्हें देखने के लिए वह गुरुचरण बाबू के घर चला आया और सीधे उन्हीं के कमरे में गया। गुरुचरण बाबू निर्जीव से चारपाई पर पड़े थे, तब ललिता और गिरींद्र वहीं पर बैठे थे। सामने कुरसी पर बैठे डॉक्टर रोग का निरीक्षण कर रहे थे।

धीमे स्वर में गुरुचरण बाबू ने शेखर को बैठने के लिए कहा। ललिता भी उसे देखकर थोड़ा घूँघट खींचकर और मुँह घुमाकर बैठ गई।

डॉक्टर साहब उसी मुहल्ले के रहनेवाले थे और शेखर को भलीभाँति जानते थे। दवाई आदि लिखकर वह शेखर के साथ बाहर आए। गिरींद्र ने बाहर आकर डॉक्टर साहब की फीस दी। जाते समय डॉक्टर साहब ने गिरींद्र से कहा, ''काफी सतर्कता की आवश्यकता है। वैसे अभी रोग बढ़ा नहीं है। यदि इनको जलवायु परिवर्तन कराने के लिए अन्यत्र ले जाया जाए तो बेहतर होगा।''

डॉक्टर के जाने के पश्चात् शेखर तथा गिरींद्र अंदर आए। ललिता ने गिरींद्र को इशारा देकर अपनी ओर बुला लिया और दोनों आपस में कानाफूसी करने लगे। शेखर कुरसी पर चुपचाप बैठा हुआ गुरुचरण बाबू की ओर देखता रहा। गुरुचरण बाबू का मुँह इस समय दीवार की ओर था, इसीलिए शेखर का दोबारा वहाँ लौटकर आना वे नहीं जान सके।

थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहने पर शेखर को ऊब सी मालूम हुई और वह उठकर अपने घर चला गया। ललिता तथा गिरींद्र अब भी कानाफूसी कर रहे थे। शेखर ने किसी से कोई बात नहीं की। शेखर का एक प्रकार से अपमान नहीं तो और क्या था?

आज शेखर को पूर्ण रूप से पता चल गया था कि ललिता चाहती है कि वह पिछले दिनों की याद तथा अधिकार, जो भी उसके सिर थे, उन्हें भूल जाए। अब वह निर्भय होकर कहीं भी रह सकता है। अब उसके ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं रही और न उसके बारे में सोचकर दिमाग खराब करने ही की आवश्यकता है। कमरे में कपड़े उतारते हुए उसे हजारों बार यही बात याद आई कि गिरींद्र ही उसका सगा है, ललिता के घरवालों का एकमात्र सहारा वही है तथा उसी पर ललिता का भी भविष्य निर्भर है। शेखर अब उसका कोई नहीं है। ललिता किसी बात में शेखर से सलाह लेने की कौन कहे, बोलना भी नहीं चाहती।

शेखर ने कपड़े उतारे और एक आरामकुरसी पर बैठ गया। वह अब भी उन विचारों में उथल-पुथल मचा रहा था। ललिता ने उसे देखकर माथे पर कपड़ा खींच लिया और मुँह घुमा लिया था, मानो वह कोई पराया हो। उसके सामने ही गिरींद्र को अपने पास बुलाकर काफी समय तक बातें करती रही। ऐसा प्रतीत होता था कि शेखर अब उसका कोई भी नहीं है और गिरींद्र ही उसका सगा है।

ललिता के ऐसे व्यवहार से शेखर को बड़ी कड़ी ठेस लगी। धीरे-धीरे ललिता के प्रति जो भी प्रेम शेखर के हृदय में था, वह घृणा के रूप में बदल गया।

गिरींद्र तथा ललिता की कानाफूसी के प्रति शेखर ने फिर विचारा कि कहीं उसकी ही गुप्त बातें तो नहीं हो रही थीं! शेखर को यह खयाल आते ही लज्जा आ गई, परंतु मन में ढाँढ़स पैदा कर वह विचार करने लगा कि ऐसा संभव नहीं। यदि वे बातें होतीं तो अब तक भयंकर दृश्य सामने आ उपस्थित होता और इसके लिए शेखर को अवश्य उत्तर देना पड़ता।

एकाएक कमरे में माँ के आने की आहट से शेखर की विचारधारा खंडित हुई। उन्होंने कहा, ''शेखर तुमको क्या हुआ, बेटा! अभी तक हाथ-मुँह भी नहीं धोया।''

''जा रहा हूँ।'' कहता हुआ शेखर तुरंत नीचे चला गया। उसकी घबराहट माँ न जान लें, इसीलिए तुरंत मुँह घुमाकर वह नीचे चला गया।

ललिता की इन तमाम बातों पर शेखर कई दिन तक विचार करता रहा और अभिमानवश अपने मन में विरक्ति के

भावों का संचयन करता रहा। वह शेखर की भूल और ज्यादती थी। केवल यही बात वह न सोचता था कि वास्तव में इन बातों में दोष तथा इनकी जड़ कहाँ पर है? उस दिन से आज तक उसने आशा की एक किरण भी ललिता की ओर नहीं फेंकी। निर्लज्ज ललिता स्वयं उसकी छाती से छाती मिलाकर तमाम बातें करने के लिए तैयार थी, उसके लिए भी उसने अवसर नहीं दिया। सारे अपराध वह ललिता के सिर पर ही मढ़ रहा था, फिर भी स्वयं ही अपनी हिंसा, क्रोध और अभिमान से जल-भुन रहा था। शेखर ही नहीं, वरन् संसार के सारे पुरुष सभी दोष नारी के ऊपर अभिमानपूर्वक मढ़कर एकतरफा फैसला करते हैं। बेचारी नारी को सबकुछ सहन करना पड़ता है। पुरुष अपने हृदय की ज्वाला में उसे भी जलाकर खाक कर देते हैं। साथ-ही-साथ वे स्वयं भी जला करते हैं। पुरुष सदैव से स्त्री जाति को पशु के समान अबला समझते आए हैं। इसलिए पुरुष को अभिमानी कहना उचित ही है। यह ज्वलंत उदाहरण है कि पुरुष कितना स्वार्थी तथा अभिमानी होता है।

मन-ही-मन जलते हुए एक सप्ताह बीता। आज भी ऑफिस से आने पर उसी प्रकार विचारों की ज्वाला में अपने को तपा रहा था। एकाएक दरवाजे पर आवाज सुनाई पड़ते ही उसका ध्यान भंग हो गया। उसके हृदय की गति रुक गई, यह देखकर कि अन्नाकाली के साथ ललिता उसके कमरे में आई और फर्श पर बिछे हुए गलीचे पर बैठ गई। बैठने के पश्चात् अन्नाकाली ने कहा, ''शेखर भैया, हम लोग कल चले जाएँगे। इस कारण हम दोनों आपको नमस्कार करने आई हैं।''

शेखर चुपचाप उनकी ओर देखता रहा।

अन्नाकाली ने फिर कहा, ''भैया,न जाने कितने अपराध अनजाने में हमने किए होंगे, उसके लिए हम आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।''

शेखर तुरंत ताड़ गया कि वह अन्नाकाली नहीं, बल्कि और ही कोई उसके मुँह से बोल रहा है। इस बार शेखर ने पूछा, ''कल कहाँ जाओगी?''

''पश्चिम की ओर! बाबूजी को मुंगेर ले जाएँगे। वहीं पर गिरींद्र बाबू का मकान है। अब हम लोगों का आना बाबूजी के ठीक हो जाने पर भी न हो सकेगा। यहाँ की जलवायु बाबूजी के लिए लाभदायक नहीं है।''

''अब उनका क्या हाल है?''

''अब कुछ ठीक है।'' अन्नाकाली ने यह कहकर बहुत से नए कपड़े दिखाकर कहा, ''यह सब ताईजी ने दिए हैं।''

ललिता अब तक खामोश बैठी रही। फिर अपने स्थान से उठकर वह मेज के पास आई और अपने आँचल से ताली खोलकर रखते हुए कहने लगी, ''यह आलमारी की चाभी अब तक मेरे पास ही थी।'' फिर थोड़ा सा मुसकराई और बोली, ''परंतु एक पैसा भी नहीं बचा है। सब पैसे खर्च हो गए हैं।''

शेखर ने कुछ कहा नहीं, बल्कि उसकी ओर देखता रहा।

अन्नाकाली ने ललिता से कहा, ''अच्छा, चलो जीजी, बहुत देर हो रही है।''

ललिता के कुछ बोलने के पहले ही शेखर ने अन्नाकाली से कहा, ''अन्नाकाली, जा माँ से मेरे लिए पान ले आ।''

लेकिन ललिता ने उसे जाने से मना कर दिया और बोली, ''तू यहीं रह, मैं ले आ रही हूँ।'' यह कहकर वह शीघ्र ही नीचे चली गई और पान लाकर अन्नाकाली को दिया कि शेखर को दे दे।

पान लेकर शेखर निराश हो गया और जीतने की आशा भरे जुआरी की भाँति हार जाने पर चुप होकर बैठा रहा।

''अच्छा, अब जाती हूँ।'' कहकर अन्नाकाली ने शेखर के निकट आकर उसका पाँव छूकर प्रणाम किया, परंतु ललिता ने वहीं से हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर दोनों चली गईं।

शेखर अवाक् और निराश बैठा रहा। ललिता आई और जो कुछ कहना चाहती थी, कह गई, पर विदा के समय शेखर को कुछ मौका न देकर तुरंत चली गई। शेखर वहीं ठगा सा बैठा रह गया। कुछ भी नहीं बोला, मानो वह कुछ कहना ही नहीं जानता था। शेखर ललिता से बहुत कुछ कहने का इच्छुक था, पर मौका ही न पा सका। अन्नाकाली को वह शायद इसीलिए साथ लाई थी कि इस विषय में कोई बात न हो। अपने मन में उसने सोचा, शायद ललिता भी नहीं चाहती थी कि उस विषय की बात छिड़े। वह शायद पिछली सब बातें भूल जाना चाहती है। यह सोचकर वह कटी पतंग की भाँति लड़खड़ाता हुआ अपने बिस्तर पर गिर पड़ा। उसके हृदय में ललिता के प्रति विरक्ति समा ही रही थी। आज की इस घटना से उसका हृदय और दु:खी हो उठा।

❑

# ग्यारह

लगभग एक वर्ष बीता। गुरुचरण बाबू के मुंगेर जाने पर भी स्वास्थ्य को कोई लाभ न पहुँचा और वह इस संसार को छोड़कर चल दिए। गिरींद्र उनको बहुत मानता था और उसने उनकी सेवा करने में कसर नहीं रखी।

आखिरी दम निकलने के समय गुरुचरण बाबू ने उसका हाथ पकड़कर आग्रह के साथ कहा था कि किसी अन्य की भाँति उनके परिवार का बहिष्कार किसी दिन न कर दे, अपनी इस घनिष्ठता को आत्मीयता का स्वरूप दे दे।

इस संकेत का अभिप्राय यह था कि वह अपनी बेटी का ब्याह उसके साथ करना चाहते थे।

गुरुचरण बाबू ने गिरींद्र से कहा, ''यदि मैंने यह सुखदायी नाता अपने जीते जी नहीं देखा तो कोई बात नहीं, परलोक में बैठकर सुखपूर्वक देख सकूँगा। बेटा, यह याद रखना कि मेरी इस इच्छा पर कहीं कुठाराघात न हो जाए।''

गिरींद्र ने खुशी से गुरुचरण बाबू की यह अभिलाषा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की थी।

भुवनेश्वरी गुरुचरण बाबू के कलकत्तेवाले मकान के किराएदारों से उनका हाल मालूम कर लिया करती थी। गुरुचरण बाबू के परलोक सिधार जाने की बात भी उन्हें उन्हीं से मालूम हुई थी।

एक दारुण घटना शेखर के घर में भी घटी। एकाएक नवीन बाबू भी यह लोक छोड़ चले। भुवनेश्वरी के हृदय पर साँप लोट गया। असह्य वेदना के कारण उनमें उन्माद समा गया। वह अपने चित्त की शांति के लिए घर का काम-काज अपनी बड़ी बहू पर छोड़कर काशी चली गईं। जाते समय कह गई थीं कि अगले साल शेखर के विवाह के समय सूचित करना, मैं आकर विवाह कर जाऊँगी।

ब्याह का सभी इंतजाम नवीन बाबू स्वयं कर गए थे। अब तक शेखर का ब्याह हो गया होता, परंतु एकाएक नवीन बाबू के देहावसान के कारण एक साल के लिए टल गया। लड़कीवाले अब और अधिक दिन रुकना नहीं चाहते थे। इसी कारण कल उन्होंने आकर तिलक कर दिया। इसी महीने में ब्याह हो जाएगा।

शेखर अपनी माँ को लिवा लाने के लिए तैयार हो रहा था। उसने जब आलमारी से सामान निकालकर संदूक में रखना शुरू किया तो उसे ललिता की याद आई, उसका यह सब काम ललिता ही किया करती थी।

ललिता को गए हुए लगभग तीन साल गुजर गए। इस बीच में शेखर को उसका हाल-चाल न प्राप्त हो सका था। उसने समाचार प्राप्त करने की कोशिश भी नहीं की थी। मालूम होता है इस ओर उसकी प्रवृत्ति भी नहीं हुई। ललिता से वह घृणा करने लगा था, परंतु आज उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन हुआ और वह ललिता के समाचार पाने की इच्छा करने लगा। वह सुख में होगी, उसकी शादी कैसे हुई, भली प्रकार हुई अथवा नहीं, अब उसे कोई दु:ख तो नहीं है, ये सब बातें जानने को वह व्याकुल हो उठा।

गुरुचरण बाबू के कलकत्तेवाले मकान के सभी किराएदार घर छोड़कर चले गए हैं। मकान खाली पड़ा है। शेखर के मन में आया कि वह गिरींद्र का हाल चारु के पिता से पूछे। थोड़ी देर कपड़े रखना भूलकर उसने संदूक खुला पड़ा रहने दिया और झरोखों से बाहर की ओर झाँकता रहा। उसी समय घर की दासी ने आकर पुकारा, ''छोटे भैया, आपको अन्नाकाली की माँ बुला रही हैं।''

शेखर ने उसकी ओर देखकर आश्चर्य के साथ पूछा, ''कौन, अन्नाकाली की माँ?''

दासी ने गुरुचरण बाबू का मकान बताते हुए कहा, ''हमारी पड़ोसन अन्नाकाली की माँ कल रात को बाहर से आई हैं, वही हैं।''

''अच्छाजी, मैं अभी आया।'' इतना कहकर वह नीचे आया।

दिन समाप्त होने पर आ गया था। शेखर को मकान के अंदर आते देखकर वह बड़ी हृदय-विदारक चीख से रो पड़ी। शेखर उस अभागिन विधवा गुरुचरण बाबू की पत्नी के पास जाकर बैठ गया। उसकी करुणाभरी चीख से शेखर की आँखों में भी आँसू भर आए। अपनी धोती के किनारे से उसने आँसू पोंछ डाले। केवल गुरुचरण बाबू की याद करके ही नहीं, बल्कि अपने पिता की याद में उसके आँसू निकल आए।

दिन समाप्त हो गया। ललिता ने आकर चिराग जलाया। दूर खड़े-खड़े ही उसने शेखर को प्रणाम किया, फिर थोड़ी देर ठहरकर चली गई। शेखर ने ललिता को दूसरे की जीवन संगिनी समझ लिया था। इसीलिए शेखर ने उस सत्रह वर्षीया पराई नववधू की ओर निगाह नहीं की और न खुलकर बात करने की हिम्मत हुई। फिर जो कुछ भी तिरछी निगाहों से उसने देख पाया, उससे यह अनुभव किया कि ललिता दुबली-पतली हो गई है।

उस विधवा ने चीखना समाप्त करने के बाद जो कुछ कहा, वह इस प्रकार है—

वह चाहती है कि अपना मकान बेचकर अपने दामाद के साथ मुंगेर में रहे। इस घर को शेखर के पिता पहले ही से खरीदने के इच्छुक थे। अत: यदि ठीक दाम देकर शेखर मकान को ले ले तो उसे अति हर्ष होगा। कारण यह कि मकान अपने ही परिचितों के पास रहेगा और उसके लिए उसे मोह तथा क्षोभ न रहेगा। इसके अलावा सबसे बड़ी बात यह थी कि कभी यहाँ आने पर उसको दो-चार दिन ठहरने के लिए आश्रय तो मिल जाएगा।

ये बातें सुनकर शेखर ने कहा कि इस काम के लिए वह अपनी माँ से कहेगा और इस कार्य को पूरा करने का भरसक प्रयत्न करेगा।

आँसू पोंछते हुए गुरुचरण बाबू की पत्नी ने पूछा, ''शेखर, क्या दीदी आएँगी?''

''आज ही मैं उन्हें बुलाने के लिए जानेवाला हूँ।''

ललिता की मामी ने सभी बातें धीरे-धीरे ज्ञात कर लीं। शेखर का ब्याह कहाँ होगा? क्या-क्या तिलक में मिलेगा, कितना गहना दिया जाएगा? नवीन बाबू का देहांत कब हुआ, दीदी कहाँ हैं, कैसी हैं, ये सभी बातें धीरे-धीरे उन्होंने मालूम कर लीं।

इन बातों के समाप्त होने तक चाँदनी छिटक आई थी। गिरींद्र इसी समय नीचे उतरकर आया और शायद वह अपनी बहन के पास गया। शेखर से गुरुचरण बाबू की स्त्री ने पूछा, ''शेखर, क्या तुम मेरे दामाद को जानते हो? इस तरह के सुयोग्य लड़कों का मिलना संसार में कठिन है!''

शेखर ने कहा कि इस बारे में उसे जरा भी संदेह नहीं है। गिरींद्र से उसकी काफी बातें हो चुकी हैं और वह उससे परिचित है। इतना कहकर वह उठकर तेजी से बाहर चला गया, लेकिन बैठक के सामने उसे रुकना पड़ा।

ललिता उस घने अंधकार में दरवाजे के पीछे खड़ी थी। उसने पूछा, ''क्या आज ही माँ को बुलाने जाओगे?''

''हाँ।''

''क्या उन्हें बहुत ही शोक हो गया है?''

''उन्हें तो उन्माद सा हो गया है।''

''तुम कैसे हो?''

''ठीक हूँ।'' कहता हुआ शेखर तेजी से चला गया।

लज्जा के अनुभव से शेखर काँप उठा। ललिता के समीप खड़े होने के कारण उसके शरीर को अपवित्र समझा।

घर के अंदर आकर किसी प्रकार इधर-उधर सामान रखकर उसने संदूक बंद किया। अभी गाड़ी जाने में कुछ

विलंब था। ललिता की याद को आग लगाकर नष्ट कर देने के लिए उसने अपने रोम-रोम में आग लगा दी। उसकी याद भुलाने के लिए उसने कसम तक खा डाली। अत्यधिक दु:ख के कारण अपने अंतकरण में उसने ललिता का तिरस्कार किया, कुलटा आिद कहने पर उतारू हो गया।

बातचीत के समय गुरुचरण बाबू की पत्नी ने कहा था, ''सुखपूर्वक शादी न होने के कारण किसी ने ध्यान नहीं दिया। ललिता ने तो तुमको सूचना देने के लिए पहले ही कहा था।'' ललिता की इन्हीं शेखी भरी बातों से उसके शरीर में आग लग गई।

❑

# बारह

**माँ** को वापस लेकर शेखर आ गया, परंतु अभी शादी के दस-बारह दिन शेष थे।

दो-तीन दिन व्यतीत हो जाने पर ललिता सवेरे के समय भुवनेश्वरी के पास बैठी हुई कोई चीज उठा-उठाकर टोकरी में रख रही थी। इस बात की जानकारी शेखर को न थी कि ललिता आई है। वह कमरे के अंदर आकर माँ को पुकारते ही चौकन्ना हो गया। ललिता ने सिर झुकाकर काम जारी रखा।

भुवनेश्वरी ने पूछा, ''क्या है, बेटा?''

जिस लिए वह अंदर माँ के पास आया था, उस आशय को भूलकर 'नहीं' कहता हुआ वह झट वहाँ से चला गया। ललिता की ओर वह भरपूर नजर न डाल सका था, परंतु उसकी निगाह उसके दोनों हाथों पर पड़ चुकी थी। उसके हाथों में काँच की दो-दो चूडियाँ पड़ी थीं। शेखर ने शुष्क मुसकान में कहा, 'यह तो एक तरह का ढोंग है!' उसे पता था कि गिरींद्र ही इसका पति है। विवाहिता स्त्री की इस प्रकार खाली कलाइयों को देखकर आश्चर्य हुआ।

उसी समय संध्या समय की बात है। जब वह तेजी से नीचे जा रहा था, उसी समय ललिता ऊपर आ रही थी। बीच में दोनों ने एक-दूसरे को देखा। ललिता एक तरफ रुक गई, परंतु शेखर के पास पहुँचते ही धीमे स्वर में बोली, ''तुमसे कुछ बात कहनी है।''

शेखर ने आश्चर्यचकित हो पूछा, ''किससे कहनी है, क्या मुझसे?''

''हाँ, तुम्हीं से कहनी है।''

''अब कौन सी बात मुझसे कहने के लिए शेष रह गई?''

ललिता चुपचाप सुन्न सी उसी स्थान पर खड़ी रही, फिर गहरी साँस छोड़कर धीरे-धीरे चली गई।

दूसरे दिन शेखर अपनी बैठक में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था। इसी बीच ज्यों ही उसने अपनी दृष्टि ऊपर फेंकी तो दिखाई पड़ा कि गिरींद्र उसके पास आ रहा है। निकट आकर गिरींद्र एक कुरसी पर बैठ गया। शेखर ने नमस्कार किया और अखबार एक तरफ रख दिया। फिर उसकी ओर उसने दृष्टि डाली, मानो उसके आने का कारण जानना चाहता हो। थोड़ी देर दोनों एक-दूसरे को देखते रहे, किसी ने कोई बात न छेड़ी। आज तक किसी ने इस विषय में बात करने की इच्छा भी प्रकट न की थी।

गिरींद्र ने काम की बात प्रारंभ की। वह बोला, ''किसी विशेष के लिए आज आपको कष्ट देने आया हूँ। मेरी सास जो चाहती हैं, वह तो आपको पता ही है। उनकी इच्छा अपना मकान आप लोगों के हाथ बेचने की है। उन्हीं का संदेश लेकर मैं आया हूँ। इस घर का जितना ही शीघ्र तोड़-ताड़ हो जाए, वह मुंगेर इसी माह में वापस चली जाएँ।''

गिरींद्र को देखते ही शेखर के हृदय में एक तेज तूफान उमड़ा हुआ था। गिरींद्र की बातें उसको अच्छी न लगीं। उसने गुस्से में कहा, ''यह सब ठीक है, पर बाबूजी के मरने के बाद से बड़े भैया ही कर्ता-धर्ता हैं। उन्हीं की राय से सब कार्य होते हैं। उनके पास ही जाकर यह सब कहिए।''

मुसकराते हुए गिरींद्र ने कहा, ''यह बात तो हमको भी ज्ञात है, परंतु इस बात को आप ही कहें तो अच्छा होगा।''

उसी भाव में शेखर ने कहा, ''आपके कहने से भी तो काम बन सकता है। इस समय तो आप ही उस पक्ष के सर्वोपरि हैं।''

''यदि मेरे कहने की आवश्यकता हो तो मैं कहे देता हूँ, परंतु कल छोटी दीदी कह रही थीं कि आप तनिक भी ध्यान दे दें तो सारा काम मिनटों में बन जाएगा।''

शेखर एक मोटे तकिए के सहारे बैठा हुआ बातें कर रहा था। गिरींद्र के ये शब्द कानों में पड़ने पर वह चौंककर उठ बैठा और बोला, ''किसने कहा? जरा फिर सुनूँ कि आपने क्या कहा?''

''ललिता दीदी कह रही थीं!''

शेखर 'ललिता दीदी' शब्द को सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। वह आगे की बात सुन ही नहीं सका कि गिरींद्र ने क्या कहा। बड़ी उत्कंठा के साथ, विह्वल भाव से गिरींद्र की ओर देखते हुए उसने पूछा, ''गिरींद्र बाबू, मुझे क्षमा करना, आपका पाणिग्रहण ललिता के साथ नहीं हुआ?''

गिरींद्र ने दाँतों के नीचे जीभ दबाते हुए कहा, ''नहीं, बस घर के सभी लोगों को तो आप जानते ही हैं। अन्नाकाली के साथ मेरा विवाह...।''

ललिता के मुँह से गिरींद्र को सभी बातें मालूम हो चुकी थीं। बोला, ''हाँ, तय तो कुछ और ही हुआ था, अन्नाकाली के साथ शादी की बात न हुई थी। प्राण निकलते समय गुरुचरण बाबू ने मुझसे कहा था कि मैं अन्यत्र अपनी शादी न करूँ। मैंने भी उनसे उस समय वादा कर लिया था। उनके मरने के बाद ललिता दीदी ने सब बातें मुझे समझाकर कहीं कि 'वास्तव में किसी को यह मालूम नहीं है कि उनके पतिदेव जीवित हैं और उनकी शादी हो गई है।' शायद दूसरे इस बात को सुनकर उन पर विश्वास न करते, परंतु मैंने तुरंत उन पर विश्वास कर लिया। इसके सिवा किसी भी स्त्री का एक से अधिक ब्याह हो भी नहीं सकता, और क्या?''

शेखर की आँखों में पहले से आँसू भरे थे। इस समय तो उसकी आँखों से आँसू टपक रहे थे और उसे किसी बात की सुध भी न थी। उसे यह भी ध्यान न था कि एक पुरुष दूसरे के सामने इस प्रकार आँसू बहाए, इस लज्जा का उसे अनुभव भी न था।

गिरींद्र की ओर शेखर भौचक्का सा देखता रहा। उसका हृदय पहले ही से शंकित था। ललिता के पतिदेव को आज उसने जान लिया। आँसू पोंछते हुए शेखर ने कहा, ''लेकिन ललिता को आप चाहते हैं?''

गिरींद्र के मुख पर वेदना का क्षणिक आभास हुआ, परंतु शीघ्र ही अपने को सँभालकर उसने हँस दिया और पहलेवाले प्रश्न के उत्तर में कहा, ''आपके इस प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है। प्यार कितना भी क्यों न हो, फिर भी किसी ब्याही हुई स्त्री से कोई ब्याह नहीं करता! खैर, जाने दो इन बातों को,मैं अपने से बड़ों के सामने इस तरह की बातें नहीं किया करता।''

गिरींद्र ने एक बार हँसकर खड़े होते हुए कहा, ''फिर मैं जा रहा हूँ, बाद में मुलाकात होगी।'' इतना कहकर प्रणाम करके वह चला गया।

शेखर पहले से ही गिरींद्र के प्रति द्वेषभाव रखता था। आजकल इस अवसर पर तो उस द्वेष ने और भी भयंकर रूप धारण कर लिया, परंतु आज गिरींद्र के चले जाने पर उस जगह को जहाँ पर गिरींद्र बैठा था, बार-बार मस्तक झुकाकर वह प्रणाम करता रहा। आदमी कितना बड़ा त्यागी हो सकता है, हँसते-हँसते कितने कठिन-से-कठिन प्रण कर बैठता है, यह अनुभव उसे अपने जीवन में आज पहली बार हुआ।

दोपहर के बाद भुवनेश्वरी ललिता की मदद से कपड़े ठीक-ठाक करके रख रही थीं। उसी समय शेखर भी वहाँ जाकर माँ के बिछौने पर जा बैठा। आज वह ललिता को देखकर भी दूर न जा सका।

भुवनेश्वरी ने उसकी ओर देखकर कहा, ''क्यों बेटा?''

पहले तो निरुत्तर होकर शेखर उन्हीं कपड़ों की ओर देखता रहा, फिर थोड़ी देर बाद पूछा, ''माँ, यह क्या हो रहा है?''

भुवनेश्वरी ने कहा, ''कितने कपड़े चाहिए, किस प्रकार से दिए जाएँगे, इसी सबका इंतजाम कर रही हूँ। अभी तो और भी कपड़े मँगाने पड़ेंगे। क्यों न बेटी, ललिता?''

ललिता ने सिर हिलाकर समर्थन किया।

शेखर ने मुसकराते हुए कहा, ''यदि मैं अपना ब्याह न करूँ तो माँ?''

भुवनेश्वरी ने हँसकर कहा, ''तुम यह भी कर सकते हो?''

''तो फिर ऐसा ही समझिए, माँ!''

व्यग्रतापूर्वक माँ ने कहा, ''यह कैसी अशुभ बात मुँह से निकाल रहे हो? अब कभी ऐसी बात न कहना।''

''अब तक मैं चुप्पी साधे रहा, माँ, किंतु अब चुप रहने में भलाई नहीं है! काम सब भले ही सत्यानाश हो जाए। मेरे लिए अब चुप रहना कलंक की बात होगी, माँ।''

भुवनेश्वरी इन बातों का आशय न समझ सकी थीं। वे शोकाकुल भाव में शेखर की ओर देखने लगीं।

शेखर ने कहा, ''माँ, तुमने अपने बेटे के अब तक के सभी गुनाह माफ किए हैं। यह भी एक गुनाह माफ कर देना। वास्तव में मैं यह शादी न कर सकूँगा।''

शेखर की इस बात को सुनकर भुवनेश्वरी की व्यग्रता और भी बढ़ गई, परंतु इस भाव को प्रकट न करके उन्होंने कहा, ''अच्छा बेटा, ठीक है! इस समय मुझे बहुत से आवश्यक कार्य करने हैं।''

शेखर ने हँसने का सा मुँह बनाकर सूखे स्वर में कहा, ''मैं तुमसे बिलकुल सत्य कहता हूँ, माँ! यह शादी कतई नहीं हो सकती!''

''यह भी क्या बच्चों का खेल है, बेटा?''

''यह बच्चों का खेल नहीं है, इसी कारण तो मैं तुमसे बार-बार कहता हूँ, माँ।''

इस बार सचमुच ही कुछ क्रोध करके भुवनेश्वरी ने कहा, ''मुझे ठीक-ठीक बता, बात क्या है? इस प्रकार गोलमटोल बातें मुझे न ही भली लगतीं और न मैं उन्हें समझ पाती हूँ।''

धीमे स्वर में शेखर ने कहा, ''किसी दूसरे दिन सुन लोगी, मैं सभी बातें स्पष्ट रूप में तुम्हारे सामने रख दूँगा, माँ।''

''किसी दूसरे दिन कहेगा!'' कपड़ों को एक किनारे हटाते हुए भुवनेश्वरी ने कहा, ''आज ही मुझे काशी छोड़ आ। इस प्रकार के घर में मैं एक मिनट भी रुकना ठीक नहीं समझती।''

शेखर सिर नीचा किए नीरस सा बैठा रहा। बड़े ही गंभीरतापूर्ण शब्दों में भुवनेश्वरी ने कहा, ''ललिता भी मेरे साथ जाने के लिए तैयार बैठी है। देखूँ, उसका कुछ प्रबंध कर सकती हूँ अथवा नहीं।''

इस बार शेखर ने मुँह उठाकर कुछ हँसकर कहा, ''माँ, जब तुम उसको साथ ले जा रही हो तो उसके लिए कुछ बंदोबस्त करने की आवश्यकता क्या है? तुम्हारी आज्ञा से बढ़कर उसके लिए और किसकी आज्ञा हो सकती है!''

शेखर को हँसते देखकर वह बड़े ही आश्चर्य में पड़ गईं और एक बार ललिता की ओर देखकर बोलीं, ''बेटी, इसकी बातें सुनती हो न! यह समझता है कि मैं अपनी इच्छा से जो भी चाहूँ, तुमसे कह सकती हूँ, जहाँ चाहूँ, ले जा सकती हूँ। शायद वह तेरी मामी से पूछने की भी जरूरत नहीं अनुभव करता।''

ललिता बिलकुल चुप रही, पर शेखर की बातचीत और भावों को देखकर वह शर्म के मारे जमीन के अंदर धँसी

जा रही थी।

शेखर ने फिर कहा, ''यदि तुम इसकी मामी को सूचना देना ही चाहती हो तो वह तुम्हारी मरजी, परंतु होगा वही जो तुम कहोगी। मैं तो यह कहता हूँ कि इसमें तनिक भी संदेह नहीं, जिसको तुम साथ ले जाना चाहती हो उसे तनिक भी इनकार न होगा। वह तुम्हारी बहू है माँ!'' यह कहकर शेखर ने अपना सिर झुका लिया।

भुवनेश्वरी आश्चर्य में पड़ गईं, जन्म देनेवाली माँ के सम्मुख पुत्र का इतना परिहास! लेकिन अपने को सँभालकर उन्होंने कहा, ''क्या कह रहा है शेखर, ललिता मेरी कौन है?''

शेखर ने मुँह ऊपर नहीं उठाया और धीरे-धीरे बोला, ''माँ, मैंने ठीक ही कहा है। यह आज की बात नहीं है, बल्कि चार वर्ष पहले की बात है! तुम उसकी सास हो, माँ और वह तुम्हारी पुत्रवधू है! अधिक मैं कहने में असमर्थ हूँ, माँ! तुम उससे ही सब पूछ लो।'' यह कहने के पश्चात् शेखर ने देखा कि ललिता गले में आँचल डालकर माँ को प्रणाम करने का उपक्रम कर रही है। वह भी उसके बगल में आकर खड़ा हो गया। दोनों ने आशीर्वाद पाने की लालसा से झुककर माँ को प्रणाम किया। दोनों घुटने टेककर जमीन पर नतमस्तक हो गए। इसके पश्चात् शेखर एक मिनट भी न रुक सका और वहाँ से चला गया।

भुवनेश्वरी बड़ी ही प्रसन्न थीं। उनकी आँखों में खुशी के आँसू उमड़ आए। वास्तव में वह ललिता को हृदय से प्यार करती थीं, बिलकुल सगी पुत्री की ही भाँति उसे समझती थीं। खुशी से उन्होंने ललिता को अपने पास खींच लिया और उसके सामने गहनेवाला संदूक खोलकर रख दिया। थोड़ी ही देर में उन्होंने ललिता के संपूर्ण अंगों को गहनों से आभूषित कर दिया। फिर ललिता से कहा, ''क्या इसी कारण गिरींद्र का ब्याह अन्नाकाली से हुआ?''

ललिता ने सिर झुकाकर कहा, ''हाँ, माँ! इस संसार में गिरींद्र बाबू की भाँति सत्य पुरुष होना कठिन है। जब मैंने उनसे अपनी बातें बताईं तो उन्होंने मेरे कहने पर विश्वास कर लिया। उन्होंने समझ लिया कि मैं 'परिणीता' हूँ। मेरे पतिदेव इस संसार में मौजूद अवश्य हैं, पर मुझे अपनाएँ या न अपनाएँ, यह उनकी अपनी इच्छा है। इतना सुनकर गिरींद्र ने और आगे जानने की चेष्टा न की।''

भुवनेश्वरी बहुत ही प्रसन्न थीं। उन्होंने ललिता के मस्तक पर हाथ रखकर कहा, ''मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम दोनों दीर्घजीवी हो! अच्छा बेटी, तुम यहीं ठहरो। मैं जाकर बड़े पुत्र अविनाश को बता आऊँ कि ब्याह की लड़की बदल गई है।''

यह कहकर भुवनेश्वरी हँसती हुई प्रसन्नचित्त से अविनाश के कमरे की ओर चली गई और ललिता नई बहू की भाँति सिर पर घूँघट डालकर बैठ गई।

❑❑❑